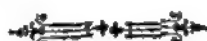
श्रीअभय जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० ६



जिनराज भक्ति-आदर्श ।



परम पूज्य शान्तमूर्ति, मुनिराज श्रीकर्पूरविजयजी के
शिष्य श्रीपुण्यविजय के शिष्यरत्न मुनिवर्य्य
श्रीप्रधानविजयजी के सदुपदेश से



सुश्रावक श्रीमान् नथमलजी भवरलालजी
रामपुरिया के आर्थिक सहाय्य से

प्रकाशक—

दानमल शंकरदान नाहटा.
नाहटों की गुवाड़, बीकानेर ।

प्रथमावृत्ति १०००

मेरु त्रयोदशी
वीर सं० २४५८

मूल्य सदुपयोग

भूमिका ।

प्रिय वाचक वृन्द !

मानव भव की प्राप्ति बहुत दुष्कर, कई भवोंके उपार्जित पुण्यों द्वारा होती है। यही एक ऐसा भव है कि जिसमें मनुष्य अनन्त सुख मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है यही कारण है कि देव भी मनुष्य भवकी प्राप्तिके लिये हर घडी लालायित रहते हैं, इसलिये यह तो कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं कि इस महान् दुष्कर जन्म को पाकर, अपनी इष्ट सिद्धि की प्राप्तिके लिये उद्योग, मनुष्य का कितना आवश्यकीय कर्त्तव्य है। संसारका प्रत्येक धर्म (नास्तिकोंके अतिरिक्त) अपनी इष्ट सिद्धिकी प्राप्तिका सर्वोत्कृष्ट साधन प्रभु की सेवा भक्ति ही मानता है। गुणी के गुणोंको प्राप्त करनेके लिये उसकी सेवा, भक्ति अनिवार्य है इसलिए पूर्णानन्द साध्यावस्था को प्राप्त करनेके लिये उस परम पुरुष परमात्मा की भक्ति नितान्त आवश्यकीय है। बस, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही प्रस्तुत पुस्तक में जैन दर्शनानुसार (जिनेश्वर बिम्ब की) भक्ति के मार्ग या विधि को समझाने का प्रयास किया गया है। यद्यपि इस पुस्तक में प्रतिपाद्य विषय से ही भक्ति का उच्चादर्श पूर्ण नहीं हो जाता है, तथापि उच्चादर्श (भक्ति) की दशा को पहुंचने के इच्छुकोंके लिये तो यह पुस्तक बडो ही काम की होगी। भक्ति का उच्चादर्श है गुणी के गुणोंमें अभिन्न भाव से एकतार हो जाना, अर्थात् गुणी परमात्मा और अपने को भिन्न न समझ अपनी आत्मा को तद्रूप कर लेना ही भक्ति का सार है। इस उच्चादर्श का लक्ष्य रख जो इस पुस्तकानुसार भक्ति मार्गमें चलेंगे वे अवश्यमेव परमानन्द को प्राप्त करेंगे यह निःशसय है।

वर्तमान कालमें क्रियाऐं प्राय शुष्क (भाव रहित) और अविवेक पूर्ण हो की जाती देखा जाती हैं यही कारण है कि अधिकाश लोगोंको इसमें (पूजादि) दिलचस्पी नहीं मालुम देती। और किसी भी काममें विना रस पड़े (दिल्चस्पी मालुम दिये) उस कामको करने को जी नहीं चाहता, बस जिससे वे इस तत्व (पूजादि) को समझें और इसमें उनको अनुराग हो यही इस पुस्तक को प्रकाशित करने का उद्देश्य है।

बहुत अरसे से मेरा यह विचार था हो कि मैं इस सम्बन्ध में एक भावपूर्ण निबन्ध लिखूं सुयोग्यवश अबकी बार जब मैं बीकानेर गया तो मुनिवर्य श्रीप्रधानविजयजी ने मुझे तीन लेखों का भाषान्तर छपवाने के लिये कहा उक्त लेखोंमें अपने उद्देश्यकी पूर्ति होते देख मैंने उपरोक्त निबन्ध लिखने के विचार को छाड़ इन्हीं लेखों की पूर्ति रूप एक "मूर्ति पूजा विचार" नामक लेख लिखने का निश्चय किया, जिसे पाठक पहिले ही पृष्ठसे देखेंगे मेरे लेख के पीछे पाठक तीन लेख और देखेंगे जिसमें से दो लेखोंके लेखक तो वयोवृद्ध जैन तत्व वेत्ता श्रा० कुंवरजी आणंदजी हैं। जो कि एक जैन दर्शन के अच्छे वेत्ता हैं और समय २ पर इस तरह के लेख निकाल जनता का अच्छा उपकार करते रहते हैं आपके उक्त दोनों लेखोंका जनताने बड़ा ही अपनाया, यही कारण है कि उक्त दोनों लेख कइवार प्रकाशित हो चुके हैं। तीसरा लेख प० चन्दुलालजी का है यह भी बड़ा ही महत्व एवं उक्त विषय को अधिक स्पष्ट करनेवाला होनेके कारण बड़ा ही उपयोगी है यह

लेख भी "अष्ट प्रकारी पूजादि समह" पुस्तक से हिन्दी भाषान्तर किया गया है। इन लेखोंको पुस्तकाकार प्रकाशन की व्यवस्था के लिये पूज्य मुनिवर्य्य श्रीप्रधानविजयजी ने मुझे सौंपा, एतदर्थ इसकी प्रेस कापी "श्रीश्वे० जैन प्रेस" को छापनेके लिये भेजी गई, लेकिन, उनके पास अधिक कार्य होने की वजह से उन्होंने प्राय दो मास बाद वापिस लौटा दी, तत्पश्चात् और भी प्रेसवालों से इसकी व्यवस्था के लिये पत्र व्यवहार किया गया, लेकिन आखिर कार उनसे भी न जवने के कारण कइ मास बाद कलकत्ते में मेरे भ्रातृपुत्र भंवरलाल को छपाने को भेजनी पडी और इसीसे प्रिय पाठकों को यह पुस्तक अधिक समय के बाद देखने को मिल सकी है।

मेरे लेख के अतिरिक्त उपरोक्त तीनों गुर्जर-लेखों का भाषान्तर बाबू हर्षचन्द्रजी बोथरा एव बाबू सुर्य्यमलजी बोथरा ने जो कष्ट उठाकर किया है इसलिये मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद दिये बिना किसी भी हालतमें नहीं रह सकता। इसका संशोधन मेरे भ्रातृपुत्र भवरलाल के यथायोग्य सम्पादन करनेके कारण उसका परिश्रम भी प्रशसनीय है। मैं उन महाशयों का भी आभारी हू कि जिनके लेखोंसे मुझे लेख लिखनेमें सहायता मिली है। मुनिवर्य्य श्रीप्रधानविजयजी के सदुपदेश से पुस्तक को नि शुल्क भेट रखनेके लिए जो आर्थिक साहाय्य श्रीमान् नथमलजी भवरलालजी रामपुरियाने प्रदान करने की कृपा की है उसके लिये मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हुए आशा

शुद्धा-शुद्धि पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	५	आर	और
४	३	भारतवय	भारतवर्ष
७	३	वाले हैं	वाला है
८	१७	भावनों	भावनाओं
१०	१५	टोले	टीले
१०	१५	वस्तुए	वस्तुऐं
१४	१	गु	गुणाके
१४	१०	क	करना
१४	११	ाक	कि
१५	४	हसलिये	इसलिये
१५	१६	कोइ	कई
१८	१०	करनेवाले	कहनेवाले
१६	१२	वृ ण के	वृण को
२३	२	इसके	इससे
२८	१५	प्रचार	धर्म प्रचार,
२८	१६	धर्म शरीरमें	शरीरमें पैर
२६	४	माना	मानो

"मूर्ति पूजा विचार"

(लेखक—अगरचन्द नाहटा)

जिन प्रनिमा-सिद्धि

आत्मा निमित्त वासी है। उसके उन्नत आर अवनत होनेमें निमित्त कारण ही की प्रधान्यता है। जिस प्रकार बुरे निमित्तो से आत्मा की अवनति होती है उसी प्रकार अच्छे निमित्तोंसे आत्मा की उन्नति होना स्वाभाविक ही है। इस लिए प्रत्येक प्राणीका यह कर्त्तव्य है कि यदि वह अपनी आत्मोन्नति करना चाहे तो अच्छे निमित्तो मे रहना चाहिये। प्रत्येक धर्ममे ईश्वर की उपासना (दर्शन, वंदन और पूजन) को आत्माके उन्नत होनेमें सबसे उत्तम निमित्त माना गया है। जैन धर्ममें भी अपने उपकारी और राग द्वेष से रहित जिनेश्वर देव की भक्ति को आत्मोन्नति में प्रथम साधन बतलाया है। वह भक्ति, उनके नाम स्मरण,

गुणोत्कीर्तन, वंदन, पूजन, आज्ञा पालन आदिसे की जा सकती है। प्राकृतिक नियमके अनुसार प्राणियों का मूर्ति (प्रतिबिम्ब) की ओर अधिक झुकाव देखा जाता है। मूल वस्तु को पहिचानने और स्मरण करने में उसकी मूर्ति या चित्र की नितान्त आवश्यकता रहती है। स्थापना को माने बिना किसी का भी व्यवहार नहीं चल सकता। इससे अति प्राचीन कालसे भारतवर्षकी जनता मूर्ति पूजा को मानती आई है, किन्तु जब भारतमें मुसलमानोंका साम्राज्य हुवा तो उनके वर्ताव का भारतवर्ष की जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। और मूर्ति को अमान्य करनेवाले मतों का भी भारतमें प्रायः तभी से प्रादुर्भाव होने लगा। यह बात इतिहास प्रमाणोंसे सिद्ध है।

मुसलमानों द्वारा बहुत से प्राचीन मन्दिरों के विध्वंस किये जाने पर भी कुछ अवशेष मन्दिरों, भूमि अन्तर्गत रहे हुवे शिला लेखों,

मूर्तियो (खोद कामसे बाहर प्रकाशित हुवे साधनो) और प्राचीन धर्म शास्त्रों द्वारा मूर्ति-पूजा की प्राचीनता भली भाति प्रमाणित होती है। पहिले में मूर्ति पूजा की आवश्यकता को दिखला कर, कुछ प्रमाणो द्वारा मूर्ति पूजा की रीति प्राचीन कालसे चली आती है ऐसा सिद्ध करके उसकी आवश्यकता, उपकारिता और लाभजन्यता को दिखाने का प्रयत्न करता हू। आशा है कि, गुणानुरागी पाठकगण ध्यानपूर्वक पढ़ कर सत्यार्थ तत्व ग्रहण कर अपनी आत्मा को साधकता के पथ पर आकृष्ट करेंगे।

(१) ससारी जीव ससार के मायाजाल में फसे हुए हैं। उनकी आत्मिक और मानसिक शक्तिया इतनी विकशित नहीं है, कि वे पर-मात्मा के चित्र या मूर्ति के विना सुचारुरूप से उनका ध्यान कर सकें। परमात्मा का ध्यान और स्मरण करनेके लिये मूर्ति की बड़ी आवश्यकता रहती है।

(२) किसी भी पदार्थ का स्वरूप समझाने के लिए उसका चित्र बहुत ही उपयोगी होता है जैसे भारतवर्ष को जानने के लिए भारतवर्ष का नक्शा। बहुत समझाने पर भी जिस विषय का अपने को बोध नहीं होता या बड़ी कठिनता से बोध होता है उसी विषयके चित्र द्वारा उसको समझाने पर उसका ज्ञान बहुत सुगमताने प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार परमात्म-स्वरूप के समझने के लिए उसकी मूर्ति की नितान्त आवश्यकता रहती है। जिनेश्वरके दर्शन मात्र से उनका स्मरण होकर अपने मनमें उनके गुण, कार्य्य और उनका पवित्र जीवन चरित्र शीघ्र ही स्मरण हो जाता है। इसी लिए उनके स्मरण करनेमें उनकी मूर्तिकी बड़ी आवश्यकता होती है।

(३) विना अनुराग (प्रेम) के किसी भी गुण की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे किसी मनुष्य को संस्कृत का विद्वान बनने की इच्छा

हो तो उसे प्रथम संस्कृत भाषाका प्रेम होना चाहिए तथा साथ ही साथ संस्कृत के विद्वानो के साथ प्रेम व अध्ययन करने की भी बहुत आवश्यकता होती है। उसी तरह जिसे परमात्म-स्वरूप समझने की उत्कंठा हो उसे परमात्मा के गुणो और परमात्मा के प्रति प्रेम होना बहुत ही जरूरी है।

(४) जो वस्तु जगतमें दृष्टिगोचर होती है उसका कुछ न कुछ अपने हृदय पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। जैसे सत्संग व कुसंगका। सुन्दर स्त्री का चित्र देखनेसे उसके लावण्यादि गुणो पर मन आकर्षित होकर विकारावस्था को भी प्राप्त हो जाता है तदनुसार एक शान्ति-मूर्ति तपस्वी, साधु, महात्मा का चित्र देखकर हृदयमें एक अपूर्व शान्ति व भक्ति, त्याग इत्यादिक गुणो की वेगवती भाव धारा बहने लगती है। इसी लिए मूर्तिकी महत्ता व आवश्यकता स्वयं सिद्ध है।

अब जिनागमों युक्तियों और इतिहास के के द्वारा मूर्ति पूजा सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है —

जैन आगम-ग्रन्थोमें बहुत जगह "जिन चैत्य" या "अरिहन्त चैत्य" ऐसा शब्द मिलता है। उसका अर्थ मूर्ति को न माननेवाले मन कल्पित करते हैं। परन्तु "नाममाला (टीका सहित) अमर कोप और अनेकार्थ संग्रह इत्यादिक कोप ग्रन्थोंमें उसका अर्थ "जिनेश्वरका बिम्ब" "जिन मन्दिर" और "जिन सभाका चौतरे बंध वृक्ष" लिखित है। राय पसेणी, जीवाभिगम, भगवती, ठाणांग, जम्बू द्वीप-पन्नत्ती और ज्ञाता कल्पादिक सूत्रोंमें "जिन मूर्ति" के पूजन करने का उल्लेख स्पष्ट मिलता है। इन सूत्रोंके अर्थ सहित पाठ देखनेकी इच्छा रखनेवालेको (१) सम्यक्त्व शल्योद्धार (२) जिन प्रतिमा हुंडीरास (३) जिन प्रतिमा सिद्धि (४) मूर्ति-मंडन (५) मूर्ति-मंडन-प्रश्नोत्तर (६) सिद्ध

मूर्ति-विवेक-विलास भाग १-२ (७) प्रतिमा-शतक (८) मणि सागरजी महाराज कृत ग्रन्थ जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले हैं (६) जैन सूत्रोंमें मूर्ति पूजा इत्यादि ग्रन्थोका अवलोकन करना चाहिए।

युक्ति-प्रमाणोसे भी मूर्ति पूजा सिद्ध हो सकती है।

(१) किसी भी भाषा-लिपि के अक्षर मूर्त (दृश्यमान) हैं। उन मूर्त अक्षरोसे लिखित ग्रन्थो द्वारा मानव-समुदाय का महान उपकार होता है। उसी प्रकार क्या ? जिनेश्वर भगवान की मूर्ति से मानव-समुदाय का महान उपकार नहीं हो सकता ?

(२) दशवैकालिक सूत्रमे साधुको स्त्री चित्रो द्वारा चित्रित स्थान पर रहना, पूर्ण निषेध किया है क्योकि उन चित्रो का प्रभाव उसके हृदय पर पड़ जानेकी सभावना रहती है। उसी प्रकार जिनेश्वर देवकी प्रतिमा देखकर,

अवसर मिलता है तब क्या मनुष्य 'जिन-प्रतिमा" को देखकर अपना आत्म कल्याण नहीं कर सकता ? अवश्य कर सकता है।

(४) अपने स्वामी, राजा व सम्राट की मूर्ति का खडन, अपमान करनेवाले को राज्य दण्ड मिलता है। अपने पूर्वजो की मूर्तियो को देखकर अपने हृदयमें आदर भाव उत्पन्न हो जाता है तब क्या "जिन प्रतिमा" को देख कर आदर, प्रेम व भक्ति नही उत्पन्न होती ? अवश्य होती है। इस प्रकार अनेक युक्तियो द्वारा "जिन प्रतिमा" का दर्शन, वदन व पूजन लाभदायक है यह अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है।

अब ऐतिहासिक दृष्टिसे 'जिन प्रतिमा" की प्राचीनता के विषयमें विचार करते हैं।

(१) दो हजार वर्षो से भी प्राचीन महाराजा "खारवेल' का शिलालेख उपलब्ध है। उससे यह जाना जाता है कि मगध नरेश नन्द

राजा कलिंग देशसे श्रीऋषभदेव भगवान की प्रतिमा ले गया था। जिसे सम्राट खारवेल वापिस ले आया। इस स्थल पर यह विचार योग्य है कि जिस "ऋषभ प्रतिमा" को नन्द ले गया था वह "मूर्ति" नन्द राजाके पूर्व काल की थी। इससे यह मूर्ति भगवान महावीर के समय की होगी ऐसा अनुमान करना अनुचित न होगा क्योंकि नन्दराजा और श्रेणिक महाराजा व भगवान महावीर के समय का अन्तर कुछ अधिक नहीं है। इससे यह भली भांति सिद्ध होता है कि भगवान महावीर के समयमें या उस समयके करीब, जैन जनता "जिन-प्रतिमा" को मानती थी और उन मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करवाकर मन्दिरोंमें स्थापित करती थी।

(२) ककालीटीलेको (मथुराके पास) खोदने पर जो प्राचीन वस्तुएं प्राप्त हुई हैं उनमें "जिन प्रतिमाएं" व जिन मन्दिरों के शिला-लेख भी बहुत संख्यामें मिले हैं। उनमें एक

शिलालेख (जिसकी लिपि बहुत ही प्राचीन है) इसवी सन्के १५० वर्ष पूर्वके एक जिन मन्दिर का है। उस लेख से इसवी सन्के सैकड़ो वर्ष पूर्व जैन मन्दिरथे, ऐसा प्रमाणित होता है। उस लेखकी शिल्पकला प्राय अढाई हजार वर्ष पूर्व की है ऐसा माना जाता है। इससे भी "जिन प्रतिमा" की प्राचीनता स्पष्ट प्रगट होती है।

(३) विक्रमकी सतरहवी शताब्दिमे खरतर गच्छीय "समयसुन्दर गणि" नामक एक बड़े विद्वान और प्रामाणिक साधु हो गये हैं। उनके समयमें श्रीघघाणी नामक ग्राममें भूमि भागमेंसे बहुत सी "जिन प्रतिमाऐ" निकली थी। जिन्होका वर्णन उन्होने स्वय रचित स्तवनमें निम्नलिखित किया है .—

ये (दो) सौ तिहोत्तर वीर थी, सवत सबल पडूर।
पद्म प्रभु प्रतिष्ठिया, आर्य सुहस्ति सूरि॥

माहतणी सुद्री अष्टमी शुभ मुहूर्त विचार ।
॥ लिपि प्रतिमा पूठे लिखि ते वाचि सुविचार ॥
मूल नायक प्रतिमा वलि सकल सुकोमल देहो जी ।
प्रतिमा श्वेत सोनातणी मोटो अचरज एहो जी ॥१॥
अर्जुन पार्श्व जुहारिये अर्जुन पुरि सिणगारोजी ।
तीर्थंकर तेवीसमो, मुक्तिनणों दातारो जी ॥२॥
चन्द्रगुप्त राजाथयो चाणक्ये दीधोराजो जी ।
तिण ए बिम्ब भरावियो, सारुया आतम काजो जी ॥३॥
महावीर मयत थका वरस सत्तर सो (१७०) वीतोजी ।
तिण समय चवदह पूर्व धर श्रुतकेवली सुविदीतोजी॥४॥
भद्रबाहु स्वामी थया तिण कीधो प्रतिष्ठा जी ।
आज सफल दिन माहरो, ते प्रतिमा मैं दीठो जी ॥५॥

इस स्तवनसे जो २ प्रतिमाए निकली थी उनकी प्राचीनता स्वय सिद्ध हो जाती हे । और भी अनेक स्थलोमें भूमि भाग से "जिन प्रतिमाऐं" निकली है और अभी निकल रही हैं उनसे स्पष्ट जाना जाता हे कि पूर्व समयमें जैन संघमे 'जिन प्रतिमा" का पूजन होता था और वे मन्दिरोंमे प्रतिष्ठित की जाती थी ।

मूर्ति पूजा का उद्देश्य

जिनेश्वर की मूर्ति जिनेश्वर समान ही लाभदायक होनेसे जो प्रभु उपासनाका उद्देश्य है वही मूर्ति पूजाका उद्देश्य है अब वह उद्देश्य क्या है ? इसको संक्षेप से नीचे लिखा जाता है। विस्तार से जानने के लिये देखो "उपासना तत्व" १ जैन सिद्धान्तोंका कथन है कि - प्रत्येक आत्मा सत्ता या निश्चय नयके अनुसार परमात्म स्वरुप है। ससारी आत्माकी यह परिस्थिति कर्मों के वश है और आत्मा पर पुद्गल विषय मे आसक्त होकर कर्म बन्धन करती है आत्मा की यह सकर्म सांसारिक अवस्था है। बस परमात्मा और आत्मामें यदि अन्तर है तो मात्र यही, संसारी आत्मा कर्म सहित है, परमात्मा कर्म रहित शुद्ध स्वरुप। इसलिये आत्मा की परम विशुद्ध अवस्था ही का नाम परमात्मा है। उन परमात्मा की सेवा

भक्ति का उद्देश्य यह नहीं है कि उनसे कोइ वस्तु मागना हो लेकिन उनके दर्शनका उद्देश्य तो यह है कि उनके गुणोको स्मरण करना, उनके समान ही अपनी आत्मा है, इसलिये आत्माके शुद्ध परमात्म स्वरुप का ध्यान करना या याद करके मे परमात्म स्वरूप होते हुए भी ऐसी परिस्थितीमें क्यो हूं ? आत्मोन्नति का मार्ग हे इसको विचारना और भक्तिका उद्देश्य हे गु अनुराग द्वारा गुणोके अनुराग को वृद्धि क इन ऊपर की बातोका साराश यह है कि अपनी आत्माको परमात्मा रुप बनाने के लिये मूर्ति पूजा पुष्ट अवलबन या कारण है। आत्माके परमात्म रूप बननेमें उपादान कारण तो आत्मा ही है यह कभी भी न भूलना चाहिये, क्योकि यदि अपन पाप वाशनाओमें लिप्त रहेगे तो मात्र दर्शन वदनसे प्रभु तार नहीं सकते है।

दूसरा उद्देश्य है उपकारी के उपकार को

मानना। जिनेश्वर देव ने आत्मा आदि द्रव्यो का यथार्थ स्वरूप वतला कर आत्मोन्नति के मार्ग (धर्म) वतलाकर अपने पर महान उपकार किया है इसलिये उपकार को स्मरण कर, मान कर, उनकी भक्ति करना योग्य है।

मूर्ति पूजा से लाभ

१ उद्देश्य के पूर्तिका होना यह उसका लाभ है उन्नत होते २ परमात्म रूप बन जावे यह ही उत्कृष्ट लाभ है।

२ उपरोक्त उत्कृष्ट लाभ होनेके साथ २ और भी अनेको लाभ देखनेमे आते हैं जिनमें से कई एक ये हैं :—

(क) प्रभु मूर्तिके दर्शन और पूजनादि से अच्छे भावो की जागृति होती है इससे "भाव-विशुद्धि" नामक लाभ होता है।

(ख) श्रद्धा स्थिर रहती है कोइ स्थानोमें यह देखा जाता है कि उधर मुनि विहार आदि-

न होने पर भी प्रभु दर्शन पूजन करनेके कारण जैन धर्ममे दृढ़ रहते है। पूर्व परम्परा से भी भी हमारे पर्वज इस कार्य को करते आये हैं इससे हम जैनो है यह जानते है तो उनका सुधार, उद्धार भी हो सकता है, धर्म से च्युत नही होते।

(ग) इतिहास मे मूर्ति और मन्दिर के शिलालेखो द्वारा बहुत प्रकाश पड़ता है यह प्रत्यक्ष ही है।

(घ) शिल्प कला को इसमे बहुत पोषण मिला है और मिलता है।

(ङ) द्रव्यको शुभ मार्गमें लगाने का यह प्रशस्त मार्ग है इत्यादि अनेक लाभ हैं। इस लिये मूर्ति का दर्शन, वदन, पूजन नित्य करना चाहिये। महाकल्प सूत्र का भी साधु श्रावकको नित्य जिन मूर्तिके दर्शन करनेका अभिप्राय पाया जाता है। जिस स्थानमें जिन मन्दिर हो वहा यदि साधु और पौपध धारी श्रावक जिन

मूर्तिका दर्शन न करे तो छट्ठ (वेला) और पचोलेका प्रायच्छित लिखा है (मूलपाठके लिये देखो सम्यक्त्वशल्योद्धार और जिन प्रतिमा सिद्धि) तथा पूजाका फल सूत्रोंमें अनेक जगह हित, सुख, चमा और मोच कहा है इससे प्रत्येक श्रावक को विधि सहित नित्य दर्शन प्रतिदिन यथाशक्ति पूजन करना चाहिये।

मूर्ति पूजा (द्रव्य पूजा)में हिंसा नहीं है

कई लोग ऐसा कहते हैं कि—द्रव्य पूजामें हिंसा है और हिंसामें तो पाप है। इसलिये द्रव्य पूजा करना ठीक नहीं। इसका उत्तर यह है कि—जिनेश्वर के वचन एकान्त नहीं है देखिये सूत्रोंमें भी कहा है—साधु नदीको पार करे, नदीमें डूबती हुई साध्वी को निकाले, इत्यादि तो क्या इन कार्योंमें हिंसा नहीं है? तथापि भगवान ने आज्ञा क्यो दी है। और

भी देखिये --साधु विहार करते हैं, मल मूत्रादि निहार करने हैं और भी कई कार्योंमें हिंसा तो होती है तथापि वह सब कार्य करने की आज्ञा दी है तो इससे यह तो अच्छी तरह जाना जाता है कि जिनेन्द्र कथन एकान्त नहीं है तथा प्रश्नव्याकरण सूत्रमें पूजा को दया में गिनी है इससे इसका फल पुण्य और निर्जरा है। अध्यवसायो की निर्मलता के कारण पाप का बन्ध नहीं हो सकता। द्रव्य पूजामें हिंसा करनेवाले भी तो अपने गुरु आदि को वन्दनार्थ हजारो माइल जाते हैं क्या उसमें हिंसा नहीं है ? तथापि परणाम की शुद्धता के कारण वे कार्य लाभदायक और कर्त्तव्यरूप समझे जाते हैं। युक्ति से भी यही सिद्ध होता है -एक मनुष्य धन कमानेको विदेश गया उसको टिकट खर्च आदि लगता है, और जब वहा से वह धन कमाके लाता है तो आते समय भी खर्च लगता है, तो भी उसे सभी लोग धन कमाके

लाया है ऐसा ही कहते हैं आवा गमनका खर्च भी होता है किन्तु उस खचका कोई जिक्र नहीं रहता, वैसे ही द्रव्य पूजा से भाव विशुद्धिको परम लाभ होनेसे हिंसारूप नहीं होकर निर्जरा और पुण्य रूप ही है। किसी को दुख पहुचाने पर पाप होता है लेकिन एक मास्टर विद्यार्थीको सदाचारी और गुणी बनाने की भावना से प्रेरित होकर शिक्षा ताड़नादि देता है तथापि उसे कोई बुरा नहीं कहते. उसको अच्छा समझा जाता है। इसी तरह माता पिता अपने बच्चे को सदाचार में रखने के लिये शिक्षादि देते हैं। डाक्टर एक रोगी के व्रंण के काटता है उस समय उस रोगी को दु ख अवश्य होता है तथापि वह कार्य डाक्टर उसके अच्छेके लिये करता है, इससे उसका उपकार समझा जाता है इत्यादि अनेको दृष्टान्त है।

मूर्ति पूजा विषयक प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न—प्रभुके नाम स्मरण से ही बहुत लाभ है तो मूर्ति पूजा क्यों करें ?

उत्तर—नामसे स्थापना विशेष लाभदायक है। जैसे एक हाथीके नाम द्वारा जो बोध होता है उससे उसकी तदाकार मूर्तिसे रंग रूप आकारादि का विशेष बोध होता है इसलिये स्थापना (मूर्ति) को मानना पूजना नाम स्मरण से भी अधिक लाभदायक होनेसे यह प्रवृति आवश्यक और विशेष लाभदायक है।

प्रश्न—मूर्तिसे क्या उपदेश मिलता है ? उपदेश का ही लाभ न हो तो क्यों माने ?

उत्तर—यद्यपि मूर्ति कुछ उपदेश नहीं देती, तथापि अपने को स्वयं उससे उपदेश मिलता है। जैसे-एक मनुष्य किसी स्थान पर गया वहां छतरी भूल आया। जब उसने एक दूसरे आदमी के पास

छतरी देखी तब उसे स्मरण आई और वह तुरत जहां छतरी भूल आया था जाकर अपनी छतरी ले आया। कहिये उसे छतरी लानेका किसने उपदेश दिया था? किन्तु उसके द्वारा उसे अपने आप उपदेश मिल गया। इसी तरह जिन मूर्ति से उपदेश मिलता है कि '-तुम भी इसी तरह शान्त, निर्विकार, बनो कर्मों को जीत कर परमात्ममय बनो।

प्रश्न—जैसे पत्थर का सिंह किसी को खा नहीं सकता पत्थर की गाय दूध नहीं दे सकती वैसे ही मूर्ति से भी कुछ लाभ नहीं होता

उत्तर—जैसे पत्थर की गाय दूध नहीं देती वैसे गाय का नाम भी तो दूध नहीं देता, तो फिर तुमको प्रभु नाम स्मरण करना भी छोड़ना पडेगा। इसलिये यह कुतर्क

चाहिये। भाव चिन्ह राग द्वेष का त्याग रूप है इसके यथासाध्य मंदिरमें तो (हर समय भी रखने योग्य ही है) अवश्य राग द्वेष के त्याग रूप भाव चिन्ह को रखना चाहिये इसीमें पूजा की सार्थकता है कहा भी है -

जिन स्वरूप थइ जिन आराधे ते सही जिनवर होवे।
भृंगी इलीका ने चटकावे, ते भृंगी जगजोवे रे ॥७॥
(आनन्दघनजी कृत नमिनाथ स्तवन)

भावार्थ यह है कि -जिन, याने राग द्वेष से रहित होके जो जिनेश्वर की आराधना करता है वह जिनेश्वर के सदृश बन जाता है। जैसे -भ्रमरी ईलीको डंक मारती है उस ईलीको भ्रमरी रूपमें सब जगत देखता है। (इसका विस्तार से अर्थ आनन्दघनजी के चोवीसी पर ज्ञान विमलसूरि और ज्ञानसारजी के टवेसे जानना चाहिये)

२ पूजन करनेवाला सात प्रकार की शुद्धि करे। वे ये है -

(क) घर अथवा दुकानादि व्यापार एवं

धन स्त्री पुत्र आदिका तथा राग द्वेषादि विभावोका स्मरण न करे यह मन शुद्धि है।

(ख) पापकारी सावद्य भाषाका त्याग वचन शुद्धि है। याने मन्दिरमे सत्य प्रिय और बोलने योग्य ही भाषा बोले।

(ग) शरीर से पाप व्यापार न करे हाथ और दृष्टि से भी इशारा न करे, स्नानादिक से शुद्ध होवे यह काय शुद्धि है।

(घ) वस्त्र कटा हुआ तथा जिसको पहिने हुए मल मूत्र मैथुनादि सेवन किया होवे, जला हुआ, छिद्रित, सिलाइ किया और कोई भी रगवाला वस्त्र न पहनना यह वस्त्र शुद्धि है। याने पूजाके वस्त्र अलग हो रखने चाहिये जो कि नये और श्वेत रगके हो।

(ङ) भूमिको श्लेस्मादि अशुचि पुद्गल रहित करना भूमि शुद्धि है।

(च) पूजन के उपयोगमें आनेवाले उपकरण लोटा, रकाबी, कलश, धोकर माजकर

साफ रखना और उसे गृह कार्य में न लाना उपकरण शुद्धि है।

(७) अस्थि (हड्डी) आदि अशुचि पदार्थ को अलग करना अस्थि शुद्धि है।

२ जिस मनुष्यके स्नान करने पर भी गूमड़े फोड़े घाव आदिसे रसी झरती हो या निकलती हो उसे. एवं सूतकादिके समय पूजन नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे आशातना होती है। फोडा फुन्सीवाला स्वयं अग्र पूजा और भाव पूजा करें। द्रव्य पूजा की सामग्री देकर दूसरेसे करावे अथवा भावना भावे कि जो जिन पूजन करे सो धन्य है।

(४) "भावना भवनाशिनी" याने भाव कर्मोको नाश करनेवाले है। द्रव्य पूजा भाव वृद्धि के कारणभूत होनेसे ही आवश्यकीय और लाभदायक मानी गयी है, इसलिये द्रव्य पूजा करते समय इस प्रकार की भावना अवश्य रखनी चाहिये जिससे पूजाकी सार्थकता होवे।

अष्ट प्रकारी पूजा करते समय रखनेकी भावना यें.-

(क) जल पूजा .- न्हवण कराते समय विचारना चाहिये कि, हे प्रभो ! जिस प्रकार जलसे बाह्य मेल नष्ट होता है उसी तरह मेरे आत्मा के रहे हुए कर्म रूपी मैल नष्ट होवो शुद्ध भाव रूप जलसे ।

(ख) चन्दन पूजा - चन्दनमें जिस प्रकार शीतलता और सुगन्धता रही हुई है वैसी ही शीतलता मेरी आत्मामें समभाव (उपशमरूप) प्रगट होवो इस भावना को जागृत होनेके लिये मैं यह पूजा करता हू ।

(ग) पुष्प पूजा - हे प्रभो जिस प्रकार ये सुमनस (पुष्पनाम) द्रव्य सुगन्ध सहित है वैसे ही सु-मनस याने मन स्वच्छ होकर मेरी आत्मा में भाव सुगन्ध प्रगट होवे ।

(घ) धूप पूजा - हे प्रभो जिस प्रकार यह धूप अशुभ गन्ध को दूर करता है और सुगन्ध को लाता है वैसे ही मेरे अशुभ आत्म परिणाम

दूर होकर शुभ भावना प्रगट होवो और जैसे इस धूप का धुवां ऊंचा जाता है वैसे ही मैं उर्द्ध गति रूप, मोक्षको पाऊ ।

(ड) दीपक पूजा - आप सर्वज्ञ हैं मुझे भी आत्म ज्ञान रूप प्रकाश की प्राप्ति हो ।

(च) अक्षत पूजा स्वस्तिक के किनारे रुप चार गति का भव भ्रमण मिटे ऊपर तीन ढगली रूप ज्ञान दर्शन चारित्र प्राप्त हो, जिससे सिद्ध शिलाके ऊपर मोक्षमें वास हो ऐसा भाव सूचित करना चाहिये ।

इस प्रकार के दोहे भी बोले :-

करता अक्षत पूजना, सफल करू अवतार ।
अ क्षत फल मागु प्रभु तार तार मुझतार ॥ १ ॥
ससारिक फल मागके, रखड्यो बहु संसार ।
अष्ट कर्म निवारवा, मागु मोक्ष फल सार ॥ २ ॥
चिहुंगति भ्रमण ससार मां जन्म मरण जजाल ।
पंचम गति विन जोव ने, सुख नहीं त्रिण काल ॥ ३ ॥
दर्शन ज्ञान चारित्र ना आराधन थी सार ।
सिद्ध शिला ने ऊपरे, हो वासा श्री कार ॥ ४ ॥

अक्षत फलकी (अखडित) याचना रूप यह अक्षत पूजा करता हू ।

(छ) नैवेद्य पूजा - हे प्रभो आप निर्वेदी और अनाहारी हैं। नैवेद्य आपके सन्मुख रखता हू इससे अनाहारी पद मुझे भी मिले।

(ज) फल पूजा - हे प्रभो आपके सामने ये फल चढ़ाता हू मुझे मोक्ष रुप फलकी प्राप्ति हो यह भावना भाता हू।

इस प्रकार अष्ट प्रकारके पूजनसे मेरे अष्ट कर्म नष्ट होवे।

॥ नव अंग पूजा समयकी भावना ॥

५ चदन पूजा नव अगोपर होती हे उस समय इस प्रकार को भावना भावे -

(क) तीर्थंकर देवने पगोसे अनेक देशो विदेशो विचरकर अनेक भव्यजीवोको प्रतिबोध दिया. हे आत्मन्! वसे तू भी पगके सहायसे प्रचार, तीर्थयात्रा आदि शुभकार्य कर। सर्व धर्म शरीरमें सेवक का काम करते हैं प्रभुने भी सेवा धर्मको स्वीकारा है याने जीवोंका तारने के लिये अनेक देश विचरे हैं इससे यह उपदेश

मिलता है कि प्रथम सेवक (सेवाधर्म अनुयायी) बने विना स्वामी पद नहीं मिलता। इसलिये सेवा धर्म स्वीकार। यह भावना पैरोंकी (अगूठे की) पूजा करते समय मानो चाहिये।

(ख) जानु घुटना) यह समाधि भूमिका है, दिक्षाके अनन्तर प्राय प्रभुजीने खड़े २ काउसग्ग किया है इससे ध्यानावस्था को चिन्तवन स्मरण करनेके लिये जानुओंकी पूजा करता हू।

(ग) हे निष्कारण उपगारी। दीक्षाके पूर्व १ वर्ष पर्यंत आपने इन हाथोंसे दान दिया। केवल ज्ञान पानेके अनंतर अनेक जीवोंको दीक्षित किया इससे इन दो हाथो की भावसे पूजा करता हू।

(घ) हे गुणेश। जिस तरह समुद्रको भुजा के बलसे तरा जाता है वैसे ही आपने इन अनत शक्तिशाली भुजाओं से ससार समुद्र को पार किया, याने तर गये इसलिये भुजाओंको पूजा करता हूं।

(ङ) हे केवलज्ञानी । मस्तक जैसे ऊंचा होता है वैसे ऊंचगतिको आप प्राप्त भये है इस लिये मस्तक की पूजा करता हूं ।

(च) हे तीर्थेश । आपने अनेक परिषह सहनकर कर्म शत्रुओंको हटाकर लोकमें तिलक के समान बन । तिलक करनेका स्थान ललाट है इसलिये ललाट की पूजा करता हू ।

(छ) हे निर्विकार । आपके यह कठ महान उपगारो है । इसी कठसे आपने अनकान्त सत्य धर्म का उपदेश देकर अनेक जीवोका उद्धार किया आज भी आपकी वाणी परम आधार भूत है इसलिये आपके कठकी पूजा करता हू ।

(ज) हे सर्वज्ञदेव । आपने इस हृदय से किसीका भी बुरा चिन्तवन न किया, सब जीवो का उद्धार होकर सन्मार्ग में पडे ऐसी उच्च भावनासे उपदेश दिया । इस उदार हृदय की भावसे मैं पूजा करता हू ।

(झ) आपके अनन्त गुणोका कोई वर्णन

नहीं कर सकता। उन गुणोके स्थान (निवास) रुप इस नाभि कमलको मैं पूजा करता हूं। (इस प्रकार अनेक सद् भावना सह आत्मोन्नति के मार्गरुप पूजा करने से महान फलकी प्राप्ति होती है। नव अग पूजाकी भावना पर विवेचन देखो -धार्मिक गद्य पद्य सग्रह पृ॰ १२७ से १३२ तक।

प्रभु दर्शनके समय की भावना।

६ प्रभुका दर्शन कर उनके गुणोका स्मरण अवश्य करना चाहिये। अनुकूलता के अनुसार प्रभुके जीवन चरित्रका स्मरण करना चाहिये कि अहो। प्रभुके १ आश्रवमार्ग का त्याग २ परिषह सहनमें वीरता ३ समभाव ४ उग्रतप ५ उदार भावना ६ दृढ़ता ७ उनके उपदेश ८ उनके किये अनुकरणीय कार्यवा गुण ६ प्रभुके उपकार आदिका स्मरण और चिन्तवन करना चाहिये। प्रभुके गुणोकी ओर अभिरुचि प्रतिदिन बढ़ाते रहना चाहिये।

साथ ही अपनी आत्म दशा का भी चिन्तवन जरूर करना चाहिये कि यह आत्मा परमात्मके सदृश ही सत्ता या वस्तुस्थितिके दृष्टिसे हैं तथापि यह अन्तर जो कि महान पड़ गया है उसका कारण मेरी आत्मा की ही पर भावमें रमणता, आत्म विभूत (पद) का भूलना ही है इसलिये प्रभुके दर्शन करके यह प्रतिज्ञा करता हू कि आजसे आत्मोन्नति के मार्गमें लगू ंगा इस प्रकार नित्य विचार करे कि प्रभु ने जो वचन आत्मोन्नतिके लिये कहें हैं उनका अवलवन कर मुझे भी परमात्म रुप बनने का अच्छा अवसर मिल गया है इसलिये हे आत्मन ! इस अपूर्व अवसरको हाथसे व्यर्थ न खो निज गुण प्रगटने में लगा इत्यादि आत्माको नानाविध सवोधित सद्वाक्यो द्वारा प्रभुके गुणोके ध्यानमें लगावे आत्म जागृति बढ़ावे नित्य विचारे कि मैंने जो कल विचार प्रभु सन्मुख किये थे उनका पालन कहा तक

किया है कहातक और करना चाहिये इत्यादि विचारोसे आत्माको उन्नत बनावे। अब प्रभुको सबोधित कर आत्माको अपनी पतित अवस्थाका ध्यान इस प्रकार कराना चाहिये कि हे प्रभो आपने धन, कुटम्बादि का त्याग कर दिया तो, शरीर के मोहका भी त्याग किया यह आपका त्याग भाव मुझे बहुत रुचता हैं कभी मै भी ऐसा त्याग करूगा तभी धन्य होऊगा। निश्चय दशामे आप और मुझमें कोई भिन्नता नहीं है तथापि वर्तमान व्यवहारमें, आप शान्त है में क्रोधी हू, आप त्यागी, मैं भोगी, आप वीतराग, मैं रागी, आप निर्ममत्वी, मैं ममत्व-धारण करनेवाला, आप निज गुण भोगी, मैं पुद्गल विषयासक्त, आप सिद्ध, मैं ससारी, आप निष्कर्म, मै कर्मोसे आवेष्ठित, आप अनेक गुण भडार मैं अनेक दोषोका सागर, आप पर-मात्मा, मैं बहिरात्मा आदि अनेक भिन्नताए हो गई हे तथापि आपके परमपावन दर्शन से

मैं अपने को धन्य, कृत पुण्य, मानता हू आज मेरी भाग्य दशा जागी अब उन्नति शीघ्र और अवश्य होगी ऐसा मैं मानता हू । भावना की धारा का वर्णन कोई कर नहीं सकता । आत्मा की उन्नतिके इच्छुक प्राणियोको विस्तार से भावना भानी चाहिये ।

७ यथावसर पर्व आदि दिनोंमें प्रभुकी अंगी करनी चाहिये इसका हेतु यह है कि दर्शकके भावो की विशेष वृद्धि होवे इसी लक्ष्य को रख कर अगी करनी चाहिये ।

८ कई जगह मन्दिरो मैं रग कराया जाता है उसके साथ ही मूर्तिके नीचेके शिलालेख पट्ट पर भी रग फेर देते हैं या अक्षर लिपिमें रग भर देते हैं तो रग करनेवाले कारीगरों को अज्ञता के कारण सवतादि अक्षरों पर उलट पुलट रग भर दिया जाता है इससे इतिहासमें बहुत खामी पहुचती है इसलिये रग अक्षरोंमें भरते समय अक्षरोंको अच्छी तरह देख कर

भरना चाहिये, स्पष्ट न पढ़ सकें तो न भरना चाहिये तथा दिवाल आदि जहां पर कोई प्राचीन शिल्पकला का नमूना हो और शिला-लेख हो उस पर रंग नहीं करना चाहिये इस तरफ जरूर ध्यान रखना।

९ पूजा या दर्शन कर प्रभुके सामने (प्रभु से) कोई भी फल मांगना नहीं चाहिये निदान (नियाणा) करना तो सर्वथा त्याज्य ही है लेकिन कई लोग प्रभुसे पुत्र, धन स्त्री, रोगनाश आदिकी याचना करते हैं यह लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व है। इसलिये कोई भी आशा, फल इच्छा रहित होके ही भक्ति करना लाभदायक है। कभी २ कई लोग प्रभुसे कोई फल मांगते हैं लेकिन उनके निकाचित कर्मवश वह प्राप्त न होनेपर उनको श्रद्धा मंद पड़ जाती है। अन्य देवोंका शरण लेने लगते हैं इत्यादि अनेक कारण हैं इसलिये फलकी याचना न करे।

१० मन्दिरके संरक्षकों का मन्दिरजीकी

आशातना का खाश ध्यान रखना चाहिये तथा प्रति वर्ष आय व्यय का हिसाब प्रगट कर देना चाहिये।

११ आशातना का अर्थ यह है कि - आय- (ज्ञानदर्शन और चारित्रका) और शातना- विनाश या खडन। याने जिस कार्यसे लाभका नाश हो उसे आशातना कहते हैं। या आ, चारो तरफ से, और शातना याने विनाश, तो चारो तरफसे जिससे विनाश हो उसे आशातना कहते है। भला कौन ऐसा विवेकी पुरुष होगा जो लाभका विनाश करनेकी इच्छा करे ? अपितु कोई नहीं। इसलिये लाभ को नाश करनेवाले सर्व कार्योंका त्याग करना चाहिये। वे कार्य मुख्यरूप से निम्नलिखित हैं। आचार्योंने अल्प बुद्धि वालोके लिये उसके ३ भेद किये हैं :-

जघन्य-मध्यम और उत्कृष्ट इनको क्रमसे लिखते हैं —

गाथा —तंबोले पाण भोयण, वाणह मेहुन्न सुअण निट्ठवण ।
मुत्तुच्चार जूअ, वज्जे जिणनाह जगईए ॥ १ ॥
(देववंदन भाष्य)

भावार्थ - जघन्य से दश आसातनायें प्रत्येक श्रावक को नहीं करनी चाहिये वे ये हैं :- १ मन्दिरमें तंबूल याने पान सुपारी आदि मुखवास खाना २ पानी पीना ३ भोजन करना ४ जूता मोजा आदि पहनना ५ रति क्रीड़ा करना ६ निद्रा लेना ७ कफ थूक डालना ८ पिशाब करना ९ बड़ी शंका (शौच) करना १० और जूआ खेलना । यद्यपि ८४ और ४२ के अन्तर्गत भी यही आशातनायें है किन्तु तीन भेद करनेका कारण यह है कि :- जो ८४ आशातना न टाल सके वह ४२ टाले जो वह भी न टाल सके तो १० तो अवश्य ही टाले । यथा शक्य ८४ आशातनाओंमें कोई भी न करना मुख्य कर्तव्य है। मध्यम ४२ आशातनायें इस प्रकार हैं.- १० तो पूर्व कथित, ११ जूआ खेलते देखना १२ पलाठी मारना १३ पग पसारना

१४ परस्पर विवाद १५ परिहास (हसी) १६ मत्सर करना १७ सिंहासन परिभोग १८ केश शरीर विभूषा १९ छत्र रखना २० तलवार रखना २१ मुकुट २२ चामर रखना २३ धरणा देना या किसी कारणसे संघ या अन्य व्यक्ति निमित्त लांघन करना २४ विलास (हास्यादि) २५ विट (अन्य पुरुष) के साथ प्रसंग करना २६ मुखकोष न रखना २७ मलीन शरीर रखना २८ मलीन वस्त्र रखे २९ अविधि पूजन ३० मन चंचलपना ३१ सचित्त द्रव्य रखना ३२ उत्तरासन न करना ३३ अंजलि न करना ३४ पूजाके उपकरण अशुद्ध रखना ३५ अशुद्ध फूल चढ़ाना ३६ अनादर करना ३७ जिनेश्वरके प्रत्यनीक-द्वेषीको निरुत्तर न करना निषेध न करे ३८ चैत्य द्रव्य भक्षण (इसके करनेसे सम्यक्त्व तक नहीं मिलता) ३९ चैत्य द्रव्य उपेक्षा (सार संभाल न करना) ४० शक्ति होने पर भी वंदन, दर्शन, और पूजनमें मंदता करना आलस्य करना

४१ देव द्रव्य भक्षी से मित्रता करना व्यापारादि करना, ४२ देवद्रव्य भक्षकको बड़ा सेठ करना, उसकी आज्ञा मानना। अब उत्कृष्ट ८४ आशातना का विवरण दिया जाता है।

१ श्लेष्म, थूक डालना, २ जुआ रमना ३ कलह ४ कला भ्यास ५ दतन कुरला करना ६ पान खाना ७ पानका पीक डाले ८ गाली आदि कुवचन बोले ९ पिशाव, शौच करे, १० शरीरादि धोवे ११ केश सवारे १२ नख कटावे या डाले १३ खून डाले १४ सूखड़ी आदि खावे १५ गूमड़े आदिकी त्वचा उतारे १६ औषधि खा पीन गेरे १७ वमन (उलटी) करे १८ दात गेरे १९ हाथ पैरका मैल डाले २० घोड़ादि बाधे २१ दातका मैल गेरे २२ आंखका मैल गेरे २३ नखका मैल २४ गालका मैल २५ नाक का मैल २६ शरीरका मैल २७ सिरका मैल २८ कानका मैल गेरे २९ भूतादिक की मत्र विद्या, साधे राज सम्बन्धी विचारे ३० विवाह

सम्बन्धी पञ्चायत करे ३१ व्यापार सम्बन्धी हिसाब करे ३२ राजाका कार्य करे बोट देवे ३३ घरका जेवरादि रखे ३४ दुष्टासन से बैठे ३५ गोबरके छाणो लीपे ३६ बड़ी करे, सुकावे ३७ वस्त्र सुकावे ३८ दाल पोसे दले ३९ पापड़ बटे सुकावे ४० राजादि के भयसे छिपे ४१ पुत्रादि मरणसे रोवे ४२ राज कथा देश कथा. स्त्री कथा और भोजन कथा करे ४३ जेवर गढ़े शस्त्र बनावे ४४ गाय भैंस बैलादि रखे ४५ ठंड दूर करने को अग्नि तापे ४६ धन्यादि राधे ४७ रुपया मोहर परखे ४८ निस्सही विधिसे न कहे ४९ छत्र ५० पगरखी मोजा ५१ शस्त्र ५२ चामर यह चार वस्तु रखे (भीतर लावे) ५३ मन एकाग्र न करे ५४ तैलादि मर्दन करे ५५ शरीरके उपभोग्य फूलो को न त्यागे ५६ हार मुद्रा, कुडलादि आभूषण उतार के न आवे ५६ प्रभुको देख हाथ न जोड़े ५८ एक वस्त्रसे उतरासन न करे ५९ मुकट रखे ६० शिर

पर वस्त्र लपेटा रखे ६१ फूलका सेहरा रखे ६२ नारियल आदिका छिलका डाले ६३ गेंद (दडी) खेले ६४ जुहार, मुजरा आदि करे ६५ भांड कुचेष्ठा करे ६६ तू तू शब्द कहे ६७ लहना ६८ सग्राम करे ६९ मस्तक केश सुकावे ७० पालखी लगाके बैठे ७१ पावडी पहने ७२ शरीर धोकर कीचड़ करे ७३ शरीर दबावे ७४ पग पसारे ७५ शरीरकी धूल झाडे ७६ मैथुन सेवन करे ७७ जूं लीख गेरे ७८ भोजन करे ७९ गुह्य चिन्ह ढक कर न बैठे ८० वैद्यक काम करे ८१ क्रय विक्रय व्यापार करे ८२ सय्या करके सोवे ८३ पीनेके वास्ते जल रखे ८४ स्नान के लिये जगह बनावे ये उत्कृष्ट ८४ आशातनायें हैं।

जहा तक हो सके स्वय किसी प्रकारकी आशा-तना करनी नहीं दूसरा करता हो तो निवारण करना यह प्रत्येक जैनी का कर्तव्य है ऐसा न करनेसे दोपका भागी होना पड़ता है १०० वर्ष

से प्राचीन मन्दिर तीर्थ कहा जाता है उसकी आशातना विशेष रुपसे वर्जे ।

कहा भी है —

तीरथनी आशातना नवि करिये, नवि करिये रे नवि करिये ।
धूप ध्यान घटा अनुसरिये तरिये संसार ॥ ती० ॥ १ ॥
आशातना करता धनहानि, भुखा न मले अन्न पानि ।
काया वली रोगे भराणो, आमच मो जेम ॥ ती० ॥ २ ॥
परभव परमाधामी ने वश पडशे, वैतरणी नदी में दवशो ।
अग्नि ने कुंडे पलशो नहीं सरणु कोय ॥ तीन ॥ ३ ॥

(नवाणू प्रकारी पूजा वीर विजयजी)

१२ इस प्रकार तथा और भी सूत्रोक्त विधि सहित कार्य करनेसे पूर्णफलकी प्राप्ति होती है अविधिसे क्रिया करना ठीक नहीं । कहा भी है-' अविधि थी क्रिया करी नवि छूटे भवनो लारो रे" इत्यादि । इसलिये प्रत्येक धर्मकार्य जो किया जाय उसका हेतु, विधि, परमार्थ सद्गुरुसे व योग्य जानकार, मनुष्योंको पूछ कर विधि सहित करनेका प्रयत्न करना चाहिये । कारण जिस प्रकार औषधि लेने पर भी पथ्य

पालन करनेसे ही फायदा होता है वैसेही कर्म रोगको दूर करनेको धर्म रूप औषधिके साथ विधि रूपी पथ्य अवश्य सेवन करना चाहिये तभी पूर्ण लाभ मिलता है अन्यथा हानि होनेकी सभावना है। यहा यह प्रश्न होना सम्भव है कि -यदि सम्पूर्ण विधि पालन न हो सके तो धर्म क्रिया (पूजनादि) करनी या नहीं ? इस का उत्तर यह हे कि – यथा साध्य प्रयत्न करने पर भी विधि न पले तो भी धर्म क्रिया तो अवश्य करते रहना चाहिये क्योकि करते रहनेसे तो कभी न कभी विधि माग में प्रवृति हो जायगी इस लिये क्रिया करनी न छोड़े तथापि विधि मार्ग की ओर लक्ष्य और प्रयत्न तो अवश्य होना ही चाहिये। विधि मार्ग आराधक को धन्य हे बहुमान करनेवाले भी धन्य है

१३ चैत्यवन्दनादिमें जो २ पाठ आवें वे तथा स्तवन, पूजाका अर्थ जरूर सीखना चाहिये।

१४ [illegible] विधि आदि इस ग्रन्थमें संक्षेप

से कही है विस्तार से देववन्दन भाष्य २ जिनदेव दर्शन, स्याद्वादानुभव रत्नाकर आदि ग्रन्थमें है इसलिये विस्तारसे उन ग्रन्थोसे और सद्गुरु से जानना ।

१५ मन्दिरमें अच्छी तरह प्रकाश पड़ने लगे कि जिससे जीव यत्ना भली प्रकारसे हो सकती हो उस समय खुलना चाहिये । मारवाड़ादिमें मन्दिर बहुत जल्दी खुलते है यह ठीक नहीं जीव दया यथावत् नहीं पलती इसलिये इस रीतिको सुधारने की जरूरत है। यह कार्य स्त्रियोंके लज्जाके कारण होता है लेकिन ऐसी लज्जा करना उचित नहीं कि जिससे धर्ममें नुकसान पहुचता हो। सूर्योदयसे पहले पूजन होता है वह भी अयोग्य है। तथा सध्या समय मङ्गल दीपक आरति हो जानेके बाद मदिर बद हो जाने चाहिये। रात्रिमें (विना विशेश पर्व और तीर्थादि) मदिर खुला रखना सघपट्टकादि ग्रं में निषेधित है। पूजाका कार्य सेवको

पर न छोड़ जैनी भाइयो को स्वय अपने हाथसे करना चाहिये अन्यथा बड़ी आशातनायें होती है

सम्यक्त्व विचार ।

सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर श्रद्धा रखने को सम्यक्त्व कहते हैं :—

१ सुदेवः- श्रीअरिहन्त सर्वज्ञ १२ गुण सहित और रागद्वेषादि १८ दूषण रहित वही सुदेव है।

२ सुगुरुः-पच महाव्रतके धारक कनक-कामिनीके सर्वथा त्यागी सर्वज्ञ प्रणीत धर्मके उपदेशक हो वे सुगुरु हैं।

३ सुधर्मः-अनेकान्त स्याद्वादमय केवली भगवान भाषित, दयामय सर्व जीवको हित कारक सुधर्म है ।

उपरोक्त तत्त्वत्रय की श्रद्धाको सम्यक दर्शन कहते है सो धारणे योग्य है। इससे विपरीत कुदेव, कुगुरु और कुधर्म के ऊपर श्रद्धा को मिथ्यात्व कहते हैं वह त्याज्य है। सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र ही मोक्षका मार्ग है।

भावना के दोहे —

त्रिजग नायकतु धणी महा महोटा महाराज ।
मोटे पुन्ये पामिया तुम दरशणहु आज ॥ १ ॥
आज मनोरथ सवि फल्या, प्रगटयो पुण्य कल्लोल
पाप करम दूरे टल्या, नाठा सर्व दंदोल ॥ २ ॥
सुखदाई प्रभु तु धडो, तुज सम अवर न कोय ।
करम मल दूरे कया पाम्या शिवपद सोय ॥ ३ ॥
ज्ञानावरणी क्षयकरी, दर्शना वरणीय कर्म ।
वेदनीय कर्म दूरे, टाल्यु मोहनीय कर्म ॥ ४ ॥
नाम कर्म ने आयु कर्म गोत्र अने अन्तराय ।
अष्ट कर्म घणी परे दूर कर्या महाराय ॥ ५ ॥
दोष अठारह क्षय गया प्रगट्या पुण्य अनन्त ।
अन्तरग सुख भोगवे निश्चल श्रीअरिहत ॥ ६ ॥
कल्पवृक्षने कामधु न, पूरे मन ना कोड ।
प्रभु सेवा थी ते मले जो मंछा (श्रद्धा) होय अडोल ॥७॥
त्रण भुवन में तु धडो, तुज सम अवर न कोय ।
इन्द्र चन्द्रने चक्रवर्ती, तुज पद सेवे सोय ॥ ८ ॥
प्रभु सेवा भावे करे प्रेमधरी मनरंग
दु ख दोहग दूरे टले पामे सुख मन चंग ॥ ९ ॥
पूजा करता प्राणिया पोते पूजनीय होय ।
आमव परभव सुख घणा तस तोले नवि कोय ॥१०॥
जीयडा जिनवर पूजिये, जिन पूज्या सुखथाय ।
दुख दोहग दूरे टले मन वांछित फल पाये ॥ ११ ॥
द्रव्यभाव थी अति घणो हैडे हरष न माय ।
[illegible] विध जिनवर पूजतां, पापकरम दूरे जाय ॥१२॥

"जिनराज-भक्तिके प्रति होनेवाली आशातनाये"

(लेखक- श्रीकुवरजी आणदजी भावनगर)

इस विषय पर विचार करना वहुत जरूरी है। उत्तम और भव भोरु प्राणी वग इन आशातनाओ से वहुत डरते रहते है किन्तु कुछ तो इस विषय पर दार्घ विचार नहीं करनेसे, कुछ उपेक्षा भावके रहनेसे, कुछ वोधकी मन्दता से और कुछ इस विचारको जाग्रत करनेवालो की कमोसे, जिनराज भक्ति करने की इच्छा रहते हुये भी, जिन पूजादि धर्म क्रिया करते समय, प्राणीवर्ग जिनेश्वर देवकी आज्ञा भगरूप यह तथा ऐसी ही अन्य अन्य आशातनाये करते रहते है जिनके विषयमे यथासाध्य नीचे वर्णन किया जाता है। आशा है वुद्धिमान लोग इस पर विचार करके जो वाते ठीक मालूम हो उसे स्वीकार करके वर्त्तन में लावेंगे।

१ सर्व प्रथम तो श्रावकके वास्ते सिर्फ जिनपूजा ही के निमित्त हर रोज स्नान करनेका कहा गया है, अन्यथा प्रति दिन स्नान करना निषेध है। जिनपूजाके हेतु जो स्नान कराना है, वहभी परिमित (माप हुआ) जलसे और इस रीतिसे कि जिससे लीलन फूलनकी व त्रस जीवोंको विराधना न हो, यतना (जयणा) पूर्वक नहाना चाहिये। किन्तु इसके विपरीत बहुत जगह या बवई जैसे बड़े शहरोंमें तथा और भी कई स्थानों में लोग इस तरह नहाते हैं कि जहा जयणा बिल्कुल नहीं पाली जाती, जलका कोई परिमाण नहीं रखा जाता और अनन्त काय (लीलन फूलन) के अनन्त जीवो की विराधना तथा त्रस (चलते फिरते) जीवो की भी विराधना होती है। ऐसा होने से प्रारभमें ही श्रीजिनेश्वर भगवान की आज्ञा का भंग होता है और यह भी एक प्रकार की आशातना ही है।

(२) स्नान करनेके पश्चात पहिनने की कम्बली तथा उसके बाद पूजाके समय पहिनने के वस्त्र इतने मेले, गन्दे, दुर्गन्धि पूर्ण और फटे हुए होते हैं कि जिसके लिये अच्छी स्थिति वाले श्रावकों को लज्जित होना चाहिये क्योंकि वे भी कदाचित्त १ सालमें १ वार पूजाका वस्त्र बदलते होंगे। वे कभी यह विचार नहीं करते कि अगर हम लोग ऐसे ही वस्त्र रखेंगे तो बिचारे साधारण स्थिति वाले कैसा वस्त्र रखेंगे? अपने घरके पूजाके वस्त्र कदाचित्त ही कोई रखता हो और यदि किसी के अपने घरके ही होंगे तो उसे स्वच्छ रखने की ओर ध्यान नहीं नहीं दिया जाता। इससे निजके शरीर को नुकसान पहुचता ही है और परमात्माके प्रति अनादर सूचित होता है और इसीसे प्रभुके प्रति भक्तिमें कमी जाहिर होती है। अत: यह भी ए[illegible] ही है।

पर यह वालकुची तो सुगन्धी खसके वालोंकी होनेसे अत्यन्त कर्कश होती है, जिसके लिये अभी तक कोई सुधार नहीं हुआ है। ऐसी कर्कश वालकुंची से प्रभुजी के समस्त शरीरको घसना, रगड़ना एक प्रकारकी महान आशातना है; अत: बन सके वहा तक वालकुंची का प्रयोग सर्वथा करना ही नहीं चाहिये। कदाचित जिनबिम्बके किसी भागमें खड्डा पड़ गया हो और उसमें की केशर न निकलती हो तो ऐसी हालतमें केवल ढीले हाथोंसे वालकुचीका सहज मात्र ही उपयोग करना चाहिये। वालकुचीका सतत् एव निरतर प्रयोग करनेसे जिनबिम्ब पर कितनी घसीटें लग जाती है यह प्रभु के शरीरके कितने ही स्थलोंपर, पलाठी (पालखी) के ऊपर के लेख पर, धातु बिम्ब की मुख व नासिकादि पर, या सिद्धचकजीके अंगा पागादि पर दृष्टि डालनेसे प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है वालकुची का सर्वथा उपयोग ही न किया जाय

और कदाचित किसी खुणे खोचरे स्थानमें वासी केशर लगी हुई रह भी जाय, तो उससे इतनी बड़ी आशातना नहीं होती जितनी वाल-कुंचो से जिनविम्ब को रगड़ने में होतो है। फिर इससे भी अधिक ध्यान इस बात पर देना चाहिये कि जिनविम्ब पर जल की बूंद नहीं रह जाय जिससे लीलन फूलन पैदा होनेकी एवं मैल जम जाने की सम्भावना रहती है। अगलुहणा करते समय इतनी जल्दी की जाती है कि खुणे खोचरे की न तो सम्भाल ही ली जाती है और न उस पर कोई दृष्टि ही डाली जाती है। इसी लिये आवश्यक्ता इस बात की है कि इन सब बातो पर विशेष उपयोग रखा जावे और वालकुंची का उपयोग अत्यावश्यक होने पर ही किया जावे। जो लोग इन बातो पर ध्यान नहीं देते वे पूजारियो (गोठीलोगो) से होनेवाली समस्त आशातनाओंके हिस्सेदार होते है, यह उनको कभी नहीं भूलना चाहिये।

इसके सम्बन्धमें यदि और भी अधिक खात्री चाहते हैं तो किसो समय ऐसी बालकुंची का अपने शरीर पर प्रयोग कर देखना चाहिये कि जिससे इस हकीकत की खात्री स्वयमेव हो जायगी एव बालकुंची उपकारके बदले अपकार अधिक करती है यह बात अच्छी तरह समझमें आ जायगी।

(६) प्रक्षालन (पखाल) करनेके पश्चात अग लुहण करनेमें आता है। कितने ही स्थानोंमें तो अगलूहणे उत्तम, स्वच्छ, नरम और उज्वल देखनेमें आते हैं। किन्तु कितने ही ग्रामो और शहरोंमें फटे हुए, मैले, सड़े हुए और बिलकुल छोटे अगलुहणे काममें लाये जाते हैं जो प्रभु जी की भक्ति के बदले आशातना का कारण रूप हो जाते हैं। यदि हरेक अच्छी स्थितिवाला पुरुष साल भरमें २ (दो) अगलुहणे मन्दिरजी भेंट करता रहे तो ऐसी स्थिति कभी पैदा न होवे। मन्दिरजी के सरचक (वहीवट) यदि

अच्छा कपड़ा लाने की उदारता दिखावें और साथही अमुक महीनेमें वदलवाये जाते हैं या नहीं एवं प्रति दिन धोकर स्वच्छ किये जाते हैं या नहीं? इन वातोकी सम्भाल रखे तो यह अविवेक पूर्ण, अनादर रूप आशातना नहीं होने पावे। यथासम्भव वढ़िया मलमलके अगलुहणे होने चाहिये। जिसमें प्रथम अगलुहण करनेके लिए देशी मलमल या कोईसा अच्छा सुन्दर वस्त्र का व्यवहार किया जाय तो कोई अड़चन नहीं होगी।

(७) अगलुहण करनेके पश्चात चन्दन-पूजा की जाती है, जिसमें ४०) रुपये रत्तल की केशर उपयोग की जाती है और चन्दन जिसकी यह खास पूजा गिनी जाती है वह विलकुल घटिया, विना सुगन्धि का और सामान्य काष्ठ जैसा उपयोग किया जाता है। इस विषय पर खास तौर से ध्यान देना चाहिये कि चन्दन तो खूब वढ़िया और ऊंची कीमत वाला होना चाहिये और इससे जो खर्च वढनेकी सम्भावना

हो तो उतना ही खर्च केशर खातेमें घटा देना चाहिये। गहरो लाल केशर चढ़ाना बहुत हानि कारक है कारण इससे अनेक बिम्बो पर दाग पड़ जाता है और छिद्र एव खड्डे तक पड़ जाते हैं। इत्र का उपयोग करनेवालोंको भी इस बातका ध्यान रखना जरूरी है कि जो इत्र (अतर) बिम्बके अनुकूल न हो तो इसके लगाने को कोई आवश्यकता नहीं है।

(८) अब पुष्प-पूजा की बारी आती है। पुष्प दो प्रकार से चढ़ाये जाते हैं। १ छटे हुये २ गुथे हुए जैसे हार। पुष्प सुमधुर सुगन्धयुक्त और सुशोभित होने चाहिये और जिसकी पाखडी गिरी हुई न हो ऐसे और योग्य रीतिसे लाये हुये होने चाहिए। ऐसी स्त्रियें जो ऋतु दिवसों का पालन न करती हो, उनके लाये हुए पुष्प सर्वथा चढ़ाने लायक नहीं होते हैं। अलावा इसके कोई पुरुष यदि विवेक पूर्वक लाया होवे तो उन पुष्पों को ले लेना चाहिये। हरेक पुष्प

को दृष्टि से अच्छी तरह देख लेना चाहिये और फिर खंखेर कर बादमें अल्प जलसे फवारे की तरह रुचि अनुसार छांटना चाहिए। पुष्पोको हर समय धोनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इससे उनकी विराधना होती है और इतना ही नहीं पर इसके अन्दर रहे हुए त्रस जीवोंकी, जो अपनी दृष्टिमें नहीं पड़े हो और खखेरने से भी जो खिरे नहीं, ऐसे जीवोंकी (सूक्ष्मत्रस) विराधना होती है। और पुष्प तो जाति ही से पवित्र है इनको पानीसे पवित्र करनेकी जरूरत नहीं रहती। ऐसे छूटे पुष्प खूब विवेक सहित शोभनीक मालूम हो उस ढगसे जिनबिम्ब पर चढ़ाना चाहिए इसमें जो कुछ भी अनुपयोग किया जायगा उसीका नाम आशातना है। पुष्पो के हारके सम्बन्धमें तो प्रधानतया विचार करने की जरूरत है। पुष्पों में सुई घुसा कर जो हार बनाये जाते हैं, वे तो सर्वथा ही चढाने के लायक नहीं

है, जिनाज्ञा का भङ्ग है, जीवोंकी विराधना है और दयालु कहलाने वाले श्रावकों के सांथा त्यागने योग्य प्रवृत्ति है। बहुतसेभोले, भक्ति वान भाइयोंके हृदयमें अभी तक यह बात स्थान नहीं पाती। इसीलिये सिद्धाचलादि तीर्थ स्थानो में उन लोगो ने इन बातोंको हद से ज्यादा बढ़ा दिया है, किन्तु ऐसा करना बिल्कुल अयोग्य है। श्राद्ध-विधि वगैरह अनेक ग्रन्थोंमें पुष्प चार प्रकार से चढ़ाने का कहा गया है, उसमें साफ तौरसे पुष्पों को गू थ कर के हार बनाने का विधान है। इसके विषय में और भी जितना चाहे, जान सकते है यहा अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यह भक्तिके नामसे होनेवाली आशातना को बिलकुल ही रोक देना चाहिये। सज्ज

(६) पुष्प-पूजा के अनन्तर धूप एवं दीप-पूजा की जाती है इसका नाम अग्र-पूजा है। असलमें तो अग्र पूजा गर्भ गृह (गंभारा) के बाहर रह कर ही करनी चाहिये परन्तु आज कल तो गर्भ गृहके अन्दर ही सर्वत्र करते नजर आते है, इतना ही नहीं पर धूपको प्रभुजी के मुख तक ले जाते हैं। अज्ञान पूजा करने वाले अगरवत्ती के टुकड़े को धूपदान में बिना रखे ही उसको प्रभुजी के इतना निकट ले जाते हैं कि उसकी राख या वह टुकड़ा प्रभुजीके शरीर पर गिर जाता है। इस अज्ञानता को दूर करने की पूरी जरूरत है क्योंकि ऐसा करने से भक्ति क बजाय महान आशातना होती है। मन्दिर जीको दीवारो पर कोयलेसे अपने नाम अ कित करनेवाले अज्ञानी पुरुष जितना नुकसान करते हैं उससे भी ज्यादा नुकसान वे करते हैं जो गर्भगृहके तमाम भागोको, धूपदीप करके काला कर देते है। इस पर हर व्यक्ति को पूरा ध्यान

देना चाहिये और धूप दान (धूपीया) हो वहां तो उसही से धूप करना चाहिये।

(१०) दीप पूजा करनेवाले मन्दिरके द्रव्यसे खरीदे हुए घृत को तैयार देख कर तथा उस घी से भरा हुआ दीपक तैयार पाकर आरती करने लग जाते हैं। परन्तु यह ख्याल रहे कि अगरवत्ती वगेरह धूप तो साधारण खाते का होता है मगर यह घृत (घी) उस खातेका नहीं होता है। विशुद्धि के प्रेमी श्रावक अपने घरके घी से दीपक करके आरती करते हैं। यहां तक कि वे लोग मन्दिरजीका एक सूत भी उपयोग नहीं करते हैं।

(११) इसके अनन्तर प्रभुजी के सामने गर्भ गृह के बाहिर बैठ कर अक्षत, फल और नैवेद्य ये ३ तीन पूजाएं एक साथ की जाती है। इसमें जिस प्रकारके विवेककी आवश्यक्ता होती है, वह ध्यानमें नहीं रहता। पूजा करने वाले मु ह से बोलते हैं कि "अक्षत शुद्ध अखंड

सु', जे पूजे जिनराय" पर स्वयं जिन चावलोसे स्वस्तिक (साथिया) करते है, वे चावल कैसे हैं, इस पर कोई ध्यान नहीं देता है। कितने ही समय तो इन चावलोमें धनेरिया (इल्ली) धावा (लट) वगैरह जन्तु भी देखने में आते हैं, जिनकी विराधना हो जाती है। फल भी साधारण, एव नैवेद्य की जगह मिश्रीके टुकड़े या पतासे जेसी मामूली चीज चढ़ाई जाती है। खेर, हर रोज के लिए तो कोई बात नहीं मगर पर्व के अवसर पर या अपने घरमे विवाह लग्नादि के समय जब काफी मिठाई रहती है या किसी मित्र या अतिथि के लिए मिष्टान्न की तैयारी होती है उस समय जिनेश्वर की भक्ति का कभी स्मरण ही नहीं होता और न वे वस्तुए कभी चढ़ाई जाती है। फल भी उत्तम जाति के नहीं होते यह जिन-पूजा के प्रति अल्पादर स्पष्ट जाहिर होता है।

मन्दिरजी के अन्दर तो सिर्फ धर्म चर्चा करनी हो तो या नवकारादि मंत्र का जाप करना हो या विधि युक्त देव वंदन करना हो या पूजा भणानी हो अथवा किसी प्रशस्त हेतु ही से बैठना या ठहरना उचित है अन्यथा निरर्थक अधिक समय तक ठहरने से औदारिक देह से और भी कोई आशातना हो जानी सम्भव है।

(१६) पूजा पढ़ाने के लिए बहुत से भाई अपना समय खर्च करते हैं पर उसमें पहिले तो खुले मुंह बोलनेसे पूजा की पुस्तक पर तथा मन्दिरजीमें थूक पड़ जानेसे और मुंहकी दुर्गन्ध फैलनेसे आशातना होती है। देरासरके अन्दर प्रवेश करनेकी समयसे लेकर निकलने की वख्त तक उघाड़े मुह से बोलना ही निषिद्ध है। अष्ट पुट मुखकोश और उत्तरासन का किनारा इसी ही के लिये है किन्तु इस तरफ बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता है। पुन स्वयं क्या बोल रहे हैं। इसके अर्थ की विचारणा नहीं

की जाती। इससे प्राय पोपट पाठ (तोते की राम राम) जैसा ही होता है। पूजा भणानेका फल परमात्माके गुणानुवाद से होनेवाली भाव पूजाके समान ही है किन्तु उसकी प्राप्ति अर्थ विचारणा के विना नही हो सकती है।

(१७) पूजा पढ़ानेमे तथा चैत्यवदनादि करने मे कितने ही अर्थ के अज्ञान मनुष्य कभी २ यहां तक अशुद्ध बोल जाते है कि परमात्माकी स्तुति के बदले निन्दावाचक शब्दो का उच्चारण कर बैठते हैं। कौन स्तवन किस समय एव किस जगह बोलना इसकी विचारना तो भला अर्थ शून्य मनुष्य कर ही कैसे सकता है? इसी लिये स्तवनादि के अर्थ का विचार करनेके लिये एव समझने के लिए परिश्रम करना चाहिये और शुद्ध शब्दोच्चारण के साथ साथ अर्थ पर गहरा विचार करना चाहिए, जिससे आ[illegible] होकर भक्ति का फल मिलेगा

(१८) इसी ही विषयमें जिन पूजा के उपगरणोंकी ओर भी ध्यान आकर्षित किया जाना है। हरेक उपकरण स्वच्छ रहना चाहिये। कलश सीधी नली वाला होना चाहिये कि जिसमें जल का असर न रहने पावे और जीव जन्तु उत्पन्न न होवें। वह भीतर से और नली में भी अच्छी तरह पोंछा जाकर साफ होना चाहिये। इनमें जितनी लापरवाही होगी उतनी ही अधिक जीव विराधना और आशातना होगी। यह हर समय ख्याल रखना चाहिये।

इस लेख को यहीं समाप्त किया जाता है, इसमें मुख्य २ बातोंके सम्बन्धमें बतलाया गया है इसके सिवाय दूसरी अनेक छोटी मोटी बातें ऐसी है कि जिनके द्वारा विचार शून्य मनुष्य बड़ी भूल करते हैं। उनमें कुछ भूलें ऐसी भी होती हैं जो अज्ञानता के कारण से क्षमा के योग्य हो सकती है परन्तु कितनीक भूलें ऐसी होती है जो क्षमा के योग्य नहीं होतीं। इस

लिये अज्ञानतावश भक्ति के नाम पर आशातनाऐं होनेसे लाभको जगह हानि हो जाती है। और उस हानि को रोकने के उद्देश्य से ही उपरोक्त लेख को लिखने का प्रयास किया गया है। आशा है कि सुज्ञ जन इसे सार्थक करेंगे।



"जिनराज-भक्ति"

(लेखक —कुवरजी आणंदजी—भावनगर)

जब भक्तिके प्रति होनेवाली आशतनाओ का लेख लिखा गया उस समय कितने ही बन्धुओंकी ओर से यह माग आई कि इस लेख के साथ २ इसी की पुष्टि में भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए इसके सम्बन्धमें भी एक लेखकी आवश्यकता है। कई सुज्ञ बन्धु तो ऊपर के लेख ही से भक्ति के प्रकार समझ सकते हैं, परन्तु कितनेक सरल प्राणियो के लिये तो स्पष्ट रूप से भक्ति को प्रतिपादन करनेवाले लेख की जरूरत रहती है इसी माग पर इस लेख को लिखने की प्रवृति की जाती है।

तीर्थंकर भगवान हमारे परमोपकारी है, हमको मोक्ष का शुद्ध मार्ग बतानेवाले है और सर्व दोषोसे विमुक्त है साथही सर्व गुणों से

संयुक्त है। ऐसे परमात्मा की भक्ति वदन, नमन, पूजन और स्तवनादि से होती है और ऐसा करनेका प्रथम कारण यह है कि उपकारी का उपकार मानना यही कृतज्ञता है। उपकार मानने ही से यह कहा जा सकता है कि यथा-शक्ति भक्ति करनेमें सामर्थ प्राप्त होगी। दूसरा कारण यह है कि वे शुद्ध मार्गोंपदेशक थे। यह आत्मा अशुद्ध मार्गोपदेशक के बताये हुए मार्गमें चलने ही से आज तक ससारमें परि-भ्रमण कर रहा है। जो स्वयं ही शुद्ध मार्गको नहीं पा सके वे दूसरोको शुद्ध मार्ग कैसे बतला सकते हैं? लौकिक देव और लौकिक गुरु स्वय शुद्ध मार्ग की अनभिज्ञता से (नहीं जाननेसे) अभी तक ससारमें भटक रहे हैं वे यदि शुद्ध मार्ग के ज्ञान का दावा करें, तो यह उनका मिथ्याभिमान है। जब तक रागद्वेप का सर्वथा क्षय नहीं होता अर्थात् जब तक वीतरागपन की प्राप्ति नहीं होती तब तक शुद्ध मार्ग बताया

ही नहीं जा सकता, क्योंकि जब तक असर्वज्ञ पन रहा हुआ है तब तक सम्पूर्ण शुद्ध मार्गका कथन किया हो कैसे जा सकता है और खरा सर्वज्ञपन वीतराग दशामें ही प्राप्त हो सकता है, परम रमा को भक्ति का यह दूसरा कारण है। तीसरा कारण यह है कि वे सर्वगुण-सम्पन्न हैं, अनन्त गुणों के स्वामी हैं, साथ ही सर्व दोषोंसे सर्वथा मुक्त हैं। ऐसे परमात्माकी भक्ति अपनी आत्मामें भी वैसेही गुण प्रगट करती है। गुणों की भक्ति, गुणशील बनाती है यह शास्त्र सिद्ध है। ये ३ कारण मुख्य हैं और भी परमात्मा की भक्तिके कई एक कारण हैं। अब यह स्पष्ट हो गया कि परमात्मा भक्ति करने के योग्य हैं और भक्ति करना यह अपना अनिवार्य कर्त्तव्य है। अब भक्ति किस ढंगसे करनी चाहिए इसका विचार करते हैं।

ऊपर यह वर्णन किया जा चुका है कि परमात्मा की या किसी भी श्रेष्ठ गुणवान को

भक्ति, वदन, नमन, पूजन एव स्तवनादि से होती है। परमात्मा की भक्ति कैसे करनी चाहिये ? यह चैत्यवदन-भाष्यादि में बहुत अच्छी तरहसे वर्णित किया गया है, उसी के आधार यहा पर भी कुछ सक्षेपमें वर्णन किया जाता है।

परमात्मा स्वय तो इस समय विद्यमान नहीं है अत. उनकी भक्ति के लिए उनकी मूर्ति की भक्ति करनी चाहिये। उनका गुणानुवाद करना, तथा उनकी आज्ञा का यथाशक्ति पालन करना चाहिये इस तरह भक्ति तीन प्रकारसे हो सकती है। भक्ति बहुमान में दर्शन पूजन का समावेश होता है। परमात्मा की मूर्ति जो इस आत्माको आत्महित साधनमें परम आलंबन भूत है, उसका तीनों ही काल दर्शन और तीनो ही काल पूजन के लिये शास्त्रमें विधान है। प्रात. काल दर्शनके समय वासक्षेप पूजा की जाती है, मध्यान्ह के दर्शन कालमे अष्ट प्रकारी पूजा की

जाती है और सायकाल के दर्शन के समय धूप दीपादि से पूजा की जाती है। उपरोक्त तीनों अवसरो पर दर्शन पूजन के साथ २ चैत्यवदन आदि भाव पूजा अवश्य करनी ही चाहिये क्योंकि द्रव्य-पूजा भाव-पूजा के ही निमित्त की जाती है। ससारी जीवोंको द्रव्य विना भाव की उत्पत्ति हो नहीं सकती, इसी लिये द्रव्य-पूजन की आवश्यकता है। भाव पूजाका महत्व विशेष है कारण द्रव्य पूजा तो परिमित फलकी दाता है और भाव-पूजा अपरिमित फल दाता है।

दर्शन अथवा पूजन करने को जाते समय पाच अभिगमन और दशत्रिक साचवना जरूरी है। यह बात मुख्यरूपसे ध्यानमे रखनी चाहिये क्योंकि इसमें भक्तिके सभी प्रकारोका समावेश हो जाता है। दर्शन करनेके निमित्त घरसे निकल कर मार्ग में चलते २ जो फल शास्त्र-कारो ने बतलाया है वह केवल एकाग्रचित्त से

दर्शन पूजन सम्बन्धी वा परमात्मा के गुणों सम्बन्धी विचारों में लयलीन होकर चलनेवाले पुरुषोंके लिये है। मार्गमें कई तरहके व्यवसायों को करता हुआ, अनेक प्रकार की विकथाओं को करता हुआ या अनेक प्रकार के आरम्भ समारंभ करने की आज्ञा देता हुआ जो जिन-मन्दिर जाता है उसे इस फल की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। प्रभातकाल मे दर्शनार्थ जाने वालों के लिए सर्व स्नान की आवश्यकता नहीं है, परन्तु हाथ पैर वगैरह शरीरके अशुद्ध भागों को जल से शुद्ध करके जाना चाहिये। सन्ध्या काल में भी इसी तरह करना उचित है क्योंकि इन दोनो काल में प्रभुजी को अंग पूजा नहीं की जाती है अतः सर्व स्नान अनावश्यक है मध्यान्ह कालमें अष्ट प्रकारी पूजा की जाती है, इसलिए उस समय बन सके जहां तक अपने घर ही से स्नान करके ⊛ शुद्ध होकर, शुद्ध वस्त्र पहिन कर मार्ग मे अपवित्र वस्तु तथा मनुष्य

या पशु वगैरह का संसर्ग न हो इस तरह से उपयोग पूर्वक जिन-मन्दिर जाना चाहिये। स्नान करने की जगह जीवाकुल नहीं होनी तथा सचित्त मिट्टी वाली भी नहीं होनी चाहिये तथा सूर्य का ताप (धूप) पहुंचे एवं जल सूख जाय ऐसी जगह चार पायेदार बाजोठ के

---

* स्नान करनेके समय निम्नलिखित श्लोक जो आचारोपदेश नामक ग्रन्थसे लिए गये हैं उस पर विशेष ध्यान देना चाहिये—

अथ स्वमन्दिरे यायाद् द्वितीये प्रहरे सुधी ।
निर्जन्तु भूमि पूर्वाशा विमुख स्नानमाचरेत ॥१॥
सप्रणाल चतुष्पाद, स्नानार्थं कारयेद्वरम् ।
नदुष्टे जले यस्माज्जन्तुराधा न जायते ॥२॥
रजस्वलाया मलिन स्पर्शे जाते च सूतके ।
मृत स्वजन कार्ये च सनाङ्ग स्नान माचरेत ॥३॥
अन्यथा शीर्ष वर्ज च वपु प्रक्षालयेत्परम् ।
कवोष्णेनाल्पपयसा देव पूजा कृते कृता ॥४॥
मन्त्रादित्य कर स्पर्शात्पवित्र जायते जगत् ।
तदाधार शिरो नित्य पवित्र योगिनो विदु ॥५॥
दयासारा सदाचारास्ते सर्वे धर्म हेतवे ।
शिर प्रक्षालनान्नित्य तज्जीवापद्वा भवेत् ॥६॥

ऊपर बैठकर कुछ उष्ण जल से समस्त शरीर साफ हो जाय, ऐसे ढंगसे हाथोसे मल कर परिमित जलसे स्नान करनी चाहिये। उस समय केश, कठ, कपाल, बगल, कधा, काछ

ना पवित्र भवेच्छीर्षं, नित्य वस्त्रेण वेष्टितम्।
मप्यात्मन स्थिते स त्व निर्मल द्युति धारिण ॥७॥
स्नानायेति जलोत्सगाद्घ्नति जन्तून् बहिर्मुखान्।
मलिन कुर्वते जीव, शोधयनि वपुर्हि ते ॥८॥
विहाय पोतकं वस्त्र, परिधाय जिन स्मरन्।
यावज्जलार्द्रौ चरणौ तावत्तत्रावतिष्ठते ॥९॥
अन्यथा मल सश्लेपाद् पवित्रौ पुन पदौ।
नस्नान जीव घातेन, भवेद्वा पातक महत् ॥१०॥

श्लोकार्थ —दूसरे प्रहरमें श्रावक अपने घरमें जीव रहित भूमि पर पूर्व दिशा में मुख करके स्नान करे। अच्छी नलीवाला बाजोठ (पाटा) उस ढग को बनवावे कि जिसमें उष्ण पाणी रहनेसे जीव की हिसा न हो। ऐसे बाजोठ पर बैठकर स्नान करे। रजस्वला स्त्री अथवा चडाल का स्पर्श हुआ हो या घरमें सूतक हो या

वगैरह अच्छी तरह साफ करनी चाहिए। स्नान के बाद तुरत ही शरीरको अच्छे तौलिये (गमछ) से पोछ कर निर्जल करना चाहिए।

स्वजनादि की मृत्यु हुई हो तो मस्तक सहित सर्वांग स्नान करे। अन्था मस्तक के अतिरिक्त शरीर को धो ले। पुन्यवन जीव किंचित उष्ण और यथासभव थोडे परिमाण मे जल लेकर देव पूजा के लिये स्नान करे। योगीश्वर का कथन है कि मस्तक निरतर पवित्र है क्योकि चन्द्र और सूर्य की किरणो के स्पर्श से समस्त जगत पवित्र होता है और जगत का आधार मस्तक माना गया है। जिन आचारोमे जीव दया प्रधान है वे ही आचार धर्म के कारण है अत नित्य मस्तक धोने से मस्तक के जीवोका उपद्रव होनेसे अधर्म होता है इसलिये नित्य मस्तक स्नान करना वर्जनीय है। मस्तक कभी भी अपवित्र नहीं होता है क्योकि वह हर समय से ढका रहता है एव निर्मल तेजवाली

पीछे पूजाके वस्त्र पहिननेके प्रथम एक ऊनी वस्त्र (कबली) पहिनना चाहिए कि जिससे शरीर सर्वथा निर्जल हो जावे। पूजा के वस्त्र यथा सम्भव स्वच्छ और श्वेत होने चाहिये। ये वस्त्र पूजाके पश्चात प्रतिदिन धोये जांय ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। इसी कारण से हर रोज के लिए सूती वस्त्र हो तो और भी अनुकूल होगे। पर श्रीमन्त तो रेशमी वस्त्र भी रख कर *नित्य धुला सकते हैं।*

आत्मा याने जीवकी जिसमें स्थिति रही हुई है।

स्नान के समय के वस्त्र को छोड़कर, दूसरे वस्त्र को पहिन कर जिनेश्वर देवका स्मरण करता हुआ, जब तक भीगे पैर रहें तब तक वहीं खड़ा रहे क्योंकि भीगे पैर धरती पर रखने से मैल पैरों पर लग जायगा और इससे वे फिर अपवित्र हो जायगे एवं गीले पैरो से जीव का ससर्ग होनेसे जीव विराधना होगी जिससे महान् पाप होगा।

ऐसे वस्त्र पहिन कर अष्टपुट मुखकोश बाध कर पूजाके उपकरण साथ लेकर जिन-मन्दिर जाना चाहिए। मुखकोश अङ्ग पूजा ही के समय बाधा जाता है ऐसा नहीं समझना चाहिए जब तक गर्भगृह के अन्दर रहे तब तक तो जरूर बाधे रखना चाहिये कारण गर्भगृह के अन्दर खुले मुख बोलनेसे दुर्गन्ध फैलती है तथा थूक भी उछलता है। इसलिये गर्भगृह से निकलने के बाद मुखकोश खोलना चाहिए। इसके साथ २ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जल, चन्दन, पुष्प पूजा करते समय मुख कोश बाधे रहने पर भी बोलना नहीं चाहिए मौन रह कर परमात्मा के गुणों का चिन्तन करते हुए अग पूजा करनी चाहिए, यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है।

(१) तीनो कालोमे जिन-मन्दिर जाते समय ५ अभिगमन निम्नलिखित तरीकेसे साचवना चाहिए। १ सचित्त वस्तु तथा उप-

लक्षण से कोई भी भोजन के काम में आने वाली वस्तु जिन-मन्दिरके गढ़में नहीं ले जानी चाहिये। इससे जिन-पूजा के निमित्त जल, पुष्प, फलादि का निषेध नहीं समझना, बल्कि अपनी शोभा की पुष्प मालादि का त्याग कर देना चाहिये।

अचित्त वस्तु तथा उपलक्षण से शरीर की शोभा के साधन लेने चाहिये। जिन-पूजा में आभूषणोंके त्याग की तो आवश्यकता नहीं, परन्तु राजचिन्ह जैसे मुकुट कुंडल वगैरह का त्याग आवश्यक है। अर्थात ऐसी चीजें जिन-मन्दिर के बाहर रख देनी चाहिये।

मनको एकाग्रता व स्थिरता रखनी चाहिये।

प्रभु की मूर्ति दृष्टिमें पड़े उसी समयसे ही दोनो हाथ जोड़े रहना चाहिये।

एक वस्त्र का उत्तरासन करना चाहिये (यह उत्तरासन चैत्यवंदनादि के समय भमि— [illegible] में आता है)

इन ५ अभिगमनो के अलावा राजाओंके लिए खड्ग, छत्र समझना चाहिये। जूते, मुकुट और चामर का त्याग करना चाहिये। इसी तरह साधारण लोगोंको लकड़ी, घड़ी, छत्ता, जूते वगैरह बाहिर छोड़ देना चाहिये। मोजे पहिन कर जिन-मन्दिर में प्रवेश करना उचित नहीं है (कारण कि यह भी एक तरह की पगरखी है)।

(२) इस तरहसे ५ अभिगमनों को साचव कर जिन-मन्दिरमें प्रवेश करते ही पहिले अग्र-द्वारमें अन्य सब गृह-व्यापारादि की त्यागरूप 'निस्सिही' कहनी चाहिये। इसके पश्चात अन्य कार्य सम्बन्धी कोई भी आलाप सलाप नहीं करना चाहिए। जिन-मन्दिर में आनेवाली स्त्रियों एवं रात्रिमें जिनमन्दिर की छत पर रहनेवाले पुरुषोंको अन्य किसी भी प्रकार की बातचीत नहीं करनी चाहिए। उन्हें स्मर्ण रखना चाहिये कि उन्होंने स्वयं ऐसी ही प्रतिज्ञा

करने के पश्चात मन्दिरमें प्रवेश किया है। स्त्रियां प्रदक्षिणा देते समय तथा बाहिर निकलते समय अनेक प्रकार की सासारिक बातें करती हैं, परन्तु ऐसी बातें करनेसे परमात्माकी आज्ञा एव अपनी की हुई प्रतिज्ञा का भी भग होता है यह उनको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये।

(३) जिन-मन्दिर मे प्रवेश करके प्रभुके सामने जाकर दूर हीसे मुख दर्शन करके पश्चात प्रभु की दाहिनी ओर से ३ प्रदक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रदक्षिणामें परमात्मा के गुणोका चिन्तवन करना चाहिये, ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीन पदोका तीन प्रदक्षिणा देते समय चिन्तवन करना चाहिये। परन्तु साथ ही साथ जीवयतना अवश्य करनी चाहिये। किसी भी अशुचि पदार्थादिक से कहीं आशातना होती हो तो उसका निवारण करना तथा करवाना चाहिए। यह प्रदक्षिणा-त्रिक भव

के लिए परम साधन है। ५

तो प्राय यह प्रवृत्ति अधिकाश रूपसे लुप्त हो गई है मगर यह प्रधानतया आदरणीय है।

(४) तीन प्रदक्षिणा देकर मुख्य द्वारसे रग मडपमें प्रवेश करते समय दूसरीबार 'निस्सिही' कहनी चाहिये, यह निस्सही जिनमन्दिर सबधी व्यापार की त्याग सूचक है। अब केवल जिन दर्शन व पूजन सम्बन्धी व्यापार ही करना रहा है। किसी समय यदि अन्दर आनेके बाद जिन-मन्दिर सम्बन्धी कोई कार्य स्मरण हो जावे, तो रग मडप से बाहिर निकल कर उस कार्यको करना व कराना चाहिये लेकिन अन्दर खड़े रहकर कोई हुक्म नहीं देना चाहिये।

(५) रंग मडपमें प्रवेश करनेके पश्चात, गर्भ गृह के समीप जाकर पुरुषवर्गको प्रभुजी की दाहिने तरफ एव स्त्रीवर्ग को बाई तरफ खड़े रह कर दर्शन करना चाहिये। चैत्यवदनादि

१ इस विधि मार्गकी तरफ लक्ष्य न देनेके कारण भीडमें कइयों को दर्शन तक नहीं हो पाते और स्त्री पुरुष एक जगह बैठनसे शिष्टाचार का भी भग होता है।

करते समय भी इसी दिशा-विभाग को काममें लाना चाहिये तथा रग मंडप से भी इसी तरह अपनी २ दिशा के द्वार से बाहिर निकलना चाहिये। प्रभूजीके सामने खड़े रहकर तो दर्शन चैत्यवंदनादि करना ही नहीं चाहिये क्योंकि इससे और कईयों के दर्शनमें अन्तराय पड़ती है और अविवेक भी दीखता है। स्त्री एवं पुरुषोंके निकलने का द्वार पृथक २ होता हैं। और इसी कारण रंगमडपमें तीन द्वार होते हैं। शाश्वत चैत्योमें भी तीन द्वार होते हैं। सिर्फ जहां चौमुखी-बिम्ब की स्थापना होती है वहां गर्भगृह के चार द्वार होते है।

(६) दर्शन करते समय पहिले तो अर्द्धा ग नमन कर प्रणाम करना चाहिये। हाथ जोड़कर मस्तकमें लगाना और पश्चात खमासमण देने के समय दोनों हाथ, दोनो गोड़े और मस्तक इन पाचों अगो को भूमि पर लगाना चाहिये। (हाथ और मस्तकको अधर रखनेवालोंका

समण सच्चा नहीं समझा जाता है) इसमें तीनों ही प्रकार के प्रणामों का समावेश हो जाता है।

(७) प्रणाम करते समय प्रभु की स्तुति, संस्कृत, मागधी गुजराती व नागरी (हिन्दी) श्लोक, गाथा, छन्द, दोहा इत्यादि से करनी चाहिये। उस समय एकसे लगाकर एकसौ आठ १०८ श्लोकादि तक बोलना चाहिये, साथही शब्दोच्चारण शुद्ध होना चाहिये अर्थका बराबर चिन्तवन करना चाहिये एवं प्रभुजी की प्रतिमा के सन्मुख अचल दृष्टि लगाये रखनी चाहिये। इस विक को चैत्यवदनादि के समय भी ध्यान में रखना चाहिये।

(८) दर्शन करनेके समय इधर उधर तथा पीठे की ओर देखना नहीं चाहिये, केवल परमात्मा ही के सामने दृष्टि जोड़े रखनी चाहिए।

(९) खमासमण देते समय पेर, गोड़े एवं हाथ रखने की जमीन का उत्तरासन के छोरसे

प्रमार्जन करना आवश्यक है। इस बात की हर समय ध्यानमें रखनी चाहिये।

(१०) प्रातःकाल एवं सायंकालमें दर्शन करनेके पश्चात अंग पूजा नहीं की जानी है। इसलिये मूलनायकजी आदि सर्व बिम्बोंका अच्छी तरह दर्शन करके प्रभुजीके सामने दाहिनी ओर ३ खमासमण देकर, चैत्यवंदन के प्रारम्भ में तीसरावार 'निस्सिही' कहनी चाहिये। यह 'निस्सिही' जिन दर्शन व पूजा सम्बन्धी व्योपार को त्यागसूचक है। अब केवल भाव पूजा ही करने की है। इसलिए द्रव्य-पूजा का त्याग किया जाता है। प्रभुके निकट जो अक्षत, फल नैवेद्यादि रखे जाते है वे चैत्यवंदन करनेके पहिले ही रख देने चाहिये। क्योंकि चैत्यवंदन करते समय तो द्रव्य पूजा सम्बन्धी कोई भी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिये, उस समय तो सिर्फ प्रभुजीके सामने दृष्टि लगाकर एकाग्रचित्त से [illegible] गुणों की स्तुति करनी [illegible]

समय तो यथासम्भव प्रभुजी के और स्तुति कर्ता के बीचमेंसे कोई गुजरे नहीं ऐसा प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि मनुष्योंके बीचमें आ जानेसे अविच्छिन्न दृष्टिमें एव ध्यानमें अन्तराय पड़ जाती है।

(११) अक्षत (चावल) का स्वस्तिक (साथिया) चार गति का अन्तसूचक है। तीन ढगले ज्ञान, दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रयी के आराधन का सूचक है और इसके बाद सिद्ध-शिला की आकृति उस स्थानके प्राप्ति की परम इच्छा सूचक है। यह आकृति कैसी होनी चाहिये ? यह जानने योग्य है। इसी ही प्रसग में अक्षत का अष्टमागलिक भी बनाने में आता है अथवा नद्यावर्त भी किया जाता है, इसमें

नोट —रिक्तपाणिर्न पश्येत्तु राजानं देवतं गुरुम्। नैमित्तिक विशेषेण, फलेन फलमादिशेत् ॥ भावार्थ —राजा देव गुरु और नैमेत्तिक (ज्योतिषी) के समीप खाली हाथ नहीं जाना चाहिये कुछ न कुछ फल लेकर जाना चाहिए क्योंकि फल से फल की प्राप्ति होती है।

अक्षत अच्छे एवं यथासम्भव अखण्डित होने चाहिए चाहे फल संख्या कम हो अथवा अधिक मगर उत्तम जाति के अच्छे फल होने चाहिये। तुच्छ जाति के फल कभी नहीं चाहिये। इसके अनन्तर नैवेद्य तरीके मिठाई वगैरह कोई भी पदार्थ चढ़ाया जाय मगर वह अच्छा होना चाहिये। पश्चात् 'निस्सिहो' कह कर चैत्यवंदन करना चाहिये।

(१२) चैत्यवंदन का समावेश भाव पूजामें है। इसलिये पहिले द्रव्य-पूजा के सम्बन्धमें कह कर बादमें इसके विषयमें लिखा जायगा। द्रव्य-पूजा के अनेक प्रकार है। जिसमें मुख्य आठ प्रकार है —जल, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, फल और नैवेद्य। इन आठोंके सम्बन्ध का अलग २ विचार किया जायगा।

(१३) द्रव्य-पूजा में शरीर-शुद्धि, भूमि-शुद्धि, वस्त्र-शुद्धि, उपकरण-शुद्धि और अन्तमें भाव- की परम आवश्यकता है। शरीर-

शुद्धि एवं वस्त्र शुद्धिके सम्बन्धमें आगे स्नानके प्रसग में कहा जा चुका है। स्नान करने की भूमि जैसी निर्जीव होनी चाहिए वैसी ही जिन-मन्दिर के अन्दर की भूमि शुद्ध भी होनी चाहिये। कचरा, कूड़ा अच्छी तरह से निकाला हुआ होना चाहिये। त्रसजीवों की विराधना किसी भी स्थानमें नहीं होने पावे इसका ख्याल रखना चाहिए। समस्त उपकरण, ओरशीया (जिस पर चदन रगड़ा जाता है) चदन, रकेबी, कटोरी, पुष्प की छावड़ी, धूपदान, मगलदीप कलश, जल रखनेका घड़ा बर्तन, प्रक्षालन करने की कुंडी, स्नात्र जल डालनेकी कुंडी, थालकुंची, अगलुहणा, पाटलुहणा, नोरपाल, पट्टा, चामर, घट इत्यादि सर्व वस्तुओंको प्रात काल ही में अच्छी तरह सावधानीसे देखकर तथा प्रमार्जन कर एवं संखेर कर और धातुके सब पात्रोंको जलसे साफ कर पीछे उपयोगमें लाने चाहिए ...ममें दृष्टिसे देखते रहनेका लक्ष्य हर

रखना चाहिए क्योंकि इसके विना असावधानीसे स्वच्छ करनेमें भी विराधना हो जानी संभव है।

(१४) जल निर्मल होना चाहिये, चन्दन ऊंची जातका सुगन्धमय होना चाहिये, पुष्प खिले हुए तथा पांखडी बिना खिरे हुए, सुवाशनायुक्त एवं विवेक पूर्वक लाये हुए होने चाहिए। और उसमे अगर जरूर होना चाहिए क्योंकि सुगन्धित द्रव्योमें यह मुख्य पदार्थ है। दीपक के लिए घृत आदि उत्तम और अपने घर का होना चाहिए। अक्षत, फल, नैवेद्य के सम्बन्ध में आगे लिखा जा चुका है अस्तु यहा फिरसे दोहराना अनावश्यक है।

(१५) चन्दन-पूजाके लिए केशर की अपेक्षा बरास (घनसार) अधिक होनी चाहिए। जैसे केशर मनोहर वर्ण और सुगन्ध देती है वैसे ही बरास भी खरी शीतलता देती है। पुष्प हरेक को दृष्टि से भली प्रकार देखना ... । धूप के लिए कोयले सुलगे हुए

चाहिये। यथासम्भव चन्दन-पूजा की केशर अपने ही हाथ से घिसनी चाहिये यदि नहीं बन सके तो पूजारी से विवेक पूर्वक मुखकोश बधाकर ओरशिया और चन्दन अच्छी तरह से साफ करवा कर पीछे निर्मल जलसे घिसवाना चाहिये। * दीपक की वाट (बत्ती) अपनी ही रुई वा सूत की होनी चाहिये।

(१६) प्रथम जल पूजा करते समय मोरपंख का उपयोग जरूर करना चाहिये। और यथा-सम्भव जीवयतनाका खूब ध्यान रखना चाहिए। पहिले श्रीमूलनायकजी ही का अभिषेक करना चाहिये, उस समय जलके साथ अधिकांश रूप से दूध एवं अल्प दही, घृत और शर्करा (बूरा) मिलानी चाहिये यह पंचामृत है प्रसंग वश तीर्थजल, गुलाबजल वगैरह भी मिलाना चाहिये अभिषेक के पीछे भीगे वस्त्र से प्रथम दिवसकी

* केशर घसने का ओरशिया ऐसे स्थान पर रखना चाहिये कि दृष्टि नहीं पड़ती हो।

तमाम केशर को दूर करनी चाहिये, अपने हाथ-से सहज ही में दूर नहीं सके, ऐसी चिपकी हुई केशर को हटाने के लिए ही सिर्फ ढीले हाथसे वालकुंची का प्रयोग करना चाहिये। इसके बाद फिर शुद्ध जलसे अभिषेक करवा कर पट्टलुहण विवेक पूर्वक करनो चाहिये। उस पट्टलुहण का प्रभूजो से स्पर्श नहीं होना चाहिये। तथा विशाल एव उज्वल अग लुहणो से दोनो हाथोसे प्रभुजीका शरीर निर्जल करना चाहिए। अगलुहणा फटा हुआ व मैला जरा भी नहीं होना चाहिये। अगलुहणे तीन करने चाहिये ताकि किसी भी प्रकार से जलाश नहीं रहने पावे। क्योंकि जहा जलांश रह जाता है वहा लोल बैठ जाता है और कचरा भी तुरंत चिपक जाता है।

(१७) अगलुहण करनेके पीछे प्रभुजीके शरीर पर बरास (घनसार) का विलेपन करना जो केवल मुखाकृति को

सब जगह करना चाहिये। पीछे केशर मिश्रित चन्दनसे क्रमश दाहिना बाया अगूठा, दाहिना बाया गोंडा, दाहिना बांया हाथ, दाहिना बाया कंधा, मस्तक, कपाल, कंठ उर और उदर इन नव अगों की पूजा करनी चाहिये। पश्चात विशेष अगी रचनी हो तो सोने चादी के वर्क, बादला और पुष्प चढ़ाना चाहिये एव उस पर विशेष तिलक करना चाहिये।

(१८) पुष्प चढ़ानेके समय एक पुष्प मस्तक पर अवश्य ही चढ़ाना चाहिये और हो सके तो सम्पूर्ण सुन्दर माला चढ़ानी चाहिये। बाकी के पुष्प शोभा दें वैसे ही चढ़ाये जाने चाहिये मगर पुष्पोंको कभी भी मरोड़ना नहीं चाहिए। सुई से सिये हुए पुष्पो का हार वगैरह कभी भूलकर भी नहीं चढ़ाना चाहिए। ऐसे हारादि चढ़ानेसे प्रभुकी आज्ञाका भग होता है। पुष्प ग्रथीम् अर्थात गुथे हुए, वेढोम अर्थात वींटे हुए, पुरिम अर्थात पोये हुए, सघातिम

अर्थात एक साथ जोड़े हुए इस तरह से चार प्रकार से चढ़ाए जाते हे। इसमें सुई से सीये जानेवालोका समावेश नहीं है क्योंकि इस तरह से सीकर हार बनाने से जीव जयणा नहीं हो सकती। इसके अलावा और भी कई तरह की हानियां हैं, जिनका वर्णन स्थानाभाव से यहां नहीं किया जाता है।

(१६) धूप-दीपादि अग्र-पूजा गर्भगृह के बाहिर ही करनी चाहिए। आजकल धूपदान, मगलदीप चामरादि चीजें हिफाजत के वास्ते गर्भगृह के अन्दर ही रखी जाती हैं और इसी कारण इनको पूजा भी अन्दर ही रह कर की जाती हैं परन्तु इसमें अविवेक अधिक बढ़ता है और धूपदीप अन्दर किये जानेसे गर्भगृह कुछ दिनोंमें काला हो जाता है इसलिए इन दो पूजाओंको यथासम्भव गभगृहसे बाहिर निकल कर मुखकोश खोलकर करनी चाहिए और यदि कभी अन्दर ही रहकर करनी पड़े तो

जहा तक बन सके प्रभुजी से दूर ही रह कर करनी चाहिए तथा अगरबत्ती यदि सुलगाई हुई होवे तो उसे हाथमें नहीं रखकर धूपदान में रखकर धूप करना चाहिए। दीपक भी इसी तरह से दूर रखना चाहिए। दीपक अनावरित (उघाड़ा) कभी भी नहीं छूट जाय इसका ध्यान रखना चाहिए तथा धूप का धूम्र (धूआ) प्रभुजी तक न चला जाय इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए।

(२०) अक्षत, फल नैवेद्य को यथाशक्ति चढ़ाते रहना चाहिए। अक्षतसे नदावर्त करना अथवा अष्ट-मागलिक माडना चाहिए। फलमें एक श्रीफल जरूर चढ़ाना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ऋतु में मिलने वाले हरे फल भी जरूर चढ़ाने चाहिए। प्रभुजी के समीप एकबार रखे हुए फलका भी स्वय उपभोग नहीं करना चाहिए। नैवेद्य में मिश्री मीठे चरो अथवा पतासा चढ़ाकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना

चाहिए पर स्वयं काममें लावे ऐसी अनेक जाति की मिठाई भी चढ़ानी चाहिए, पर इसमें भी इतना जरूर ख्याल कर लेना चाहिए कि कहीं वह मिठाई झूठे (ऐठे) हाथोंसे छुई हुई न हो। मिठाई स्वच्छ होनी चाहिए।

(२१) अष्ट-प्रकारी पूजामें द्रव्य वृद्धि का भी समावेश होता है, इसलिए हमेशा यथा-शक्ति द्रव्य भी चढ़ाना चाहिए। बादमें चामर आदि प्रातिहार्यों की भी पूजा करनी चाहिए। चामर विवेकपूर्वक दूर रहकर वींजना (दुलाना) चाहिए तथा घंटा बजाना चाहिए इत्यादि करते हुए द्रव्य-पूजा की समाप्ति करनी चाहिए।

(२२) द्रव्य-पूजामें और भी कई बातोंका समावेश हो जाता है। यहां जो कुछ बताया गया है वह नित्य की जाने वाली अष्ट-प्रकारी पूजा के सम्बन्ध में है। बाकी पर्वोंमें तथा तीर्थोंमें विशेष रीतिसे पूजा भक्ति करनी चाहिए उस ... अपनी शक्तिको न छिपा कर

उपाय से शासन की उन्नति हो, अनेक जीव धर्म को प्राप्त करें, सम्यक्त्व दृढ़ एवं निर्मल हो वैसे ही ढंगसे पूजा भक्ति विशेष रीतिसे करनी चाहिए। इसके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें विधिवादमें यथेष्ट उल्लेख मिलता है एवं चरितानुवाद में तो अनेक पुण्यशाली प्राणियोंने आचरण किया है। इसीसे समझ लेना चाहिए। यहां विस्तार हो जानेके कारण विशेष नहीं लिखा जाता है। पर यह मुख्य रूपसे ध्यान में रखना चाहिए कि द्रव्य-पूजाके प्रति किंचित भी अनादर व अल्पादर कभी नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा किया गया तो अवश्य भव वृद्धिके कर्म बन्धेंगे।

(२३) जिनेश्वर को पूजा करते समय भावना कैसी होनी चाहिए व प्रभु की कौनसी अवस्था का चिन्तन करना चाहिये, यह जानना जरूरी है। भगवान की छद्मावस्था, ज्ञानावस्था एवं सिद्धावस्था इन तीनों अवस्थाओंका चिन्तवन करना चाहिये। छद्मावस्था के गृहस्थपन तथा

मुनिपन ये दो भेद हैं। प्रभुजीको स्नान कराते एव पूजन करते उनकी बाल्यावस्था तथा राज्य अवस्थाका चिन्तवन करना चाहिये। चामरादि प्रातिहार्य संयुक्त देखकर उनकी केवली अवस्था का चिन्तवन करना चाहिये एव पल्यकासनमें व कायोत्सर्ग मुद्रामें स्थित देखकर सिद्धावस्थाका चिन्तवन करना चाहिये अथवा इन्हीं तीन प्रसंगो में पिंडस्थ, पदस्थ और रूप रहित इन तीन अवस्थाओका चिन्तवन करना चाहिये। पिडस्थ अर्थात छद्मावस्था, पदस्थ अर्थात केवली अवस्था एव रूप रहित अर्थात सिद्धावस्था, यो समझना चाहिये। कहीं २ रूपस्थ और रूपातीतको लेकर चार अवस्थायें भी मानी गई हैं। भगवान की सेवा भक्ति करते समय मूर्तिकी उन्हीं अवस्था-ओको स्मरण करते हुए एव मूर्ति उन्हीं अवस्था-ओमें है, इसको लक्ष्यमें रखकर सेवा भक्ति करनी [illegible] इसीसे उन २ योग्य [illegible]ई, यह समझा जा

(२४) प्रभु-पूजा के लिए सर्वत्र दो वस्त्र रखने का विधान है। एक धोती और दूसरा उत्तरासन, मुखकोश उत्तरासन की छोरसे बना कर बांधा जाता है। आजकल मुखकोश ठीक आठ पुड़तवाला बाधा जाय इसलिए अलग रूमाल भी रखा जाता है। जिससे अष्टपुट करने पर मुख की गन्ध बाहिर न निकले ऐसा मुखकोश बांधना चाहिये। उत्तरासन एक ही वस्त्र का जिसमें किसी प्रकार का जोड़ (सान्ध) लगा हुआ न हो तथा दोनों ओर से किनारी-दार हो ऐसा रखना चाहिए।

(२५) द्रव्य-पूजा करनेके पश्चात भाव-पूजा करनेका अवसर प्राप्त होता है, द्रव्य-पूजा अवग्रह के अन्दर रहकर की जाती है। क्योंकि उसमें प्रभुजीके अंग के साथ सम्बन्ध है। भाव-पूजा अवग्रह से बाहिर रहकर की जाती है। शास्त्र-कारों ने अवग्रहका प्रमाण जघन्य नव (९) हाथ तथा उत्कृष्ट साठ (६०) हाथ बताया है, पर अभी

देरासर के प्रमाणानुसार ही रखा जा सकता है क्योंकि यदि कहीं पर देरासर ही नव हाथ प्रमाण का नहीं है तो यह जघन्य अवग्रह नौ हाथ का भला कैसे रखा जा सकता है ? अत: यथायोग्य रखना चाहिये। अवग्रह वाहिर निकल पर तीन खमासमण देकर आदेश मांग कर चैत्यवदन करना चाहिये।

(२६) चैत्यवन्दन के ३ भेद है। जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। जघन्य तो सामान्य नमस्कारात्मक श्लोकादि बोलने ही से किया जा सकता है। मध्यम चैत्यवन्दन आजकल की प्रवृत्ति अनुसार प्रथम चैत्यवदन बोलकर नमुत्थुणं कहना, स्तवन कहना, जयवीयराय, अरिहंत चइयाणं कहकर काउसग्ग करके स्तुति कहनी इसीको कहते हैं। और उत्कृष्ट चैत्यवदन जिसमें आठ थुई से देववन्दन किया जाता है उसको समझना चाहिये और जिसमें ५ शक्रस्तव किये जाते हैं। वाकी ५ दडक और वारह

अधिकार जो चार स्तुतियो से देवसिक प्रतिक्रमण के प्रारम्भ में एव रात्रिके प्रतिक्रमण के प्रान्त भागमें, देव वन्दनमें किये जाते हैं, इससे इसके अन्दर भी आ जाता है। तीनो काल मध्यम चैत्यवन्दन तो अवश्य करना चाहिये।

(२७) चैत्यवदन स्तवन और स्तुति ये तीनों चीजे प्राय. गुजराती भाषामें (हिन्दी, मारवाड़ी आदि मे भी) पद्यमय रचना म कहनेमें आते हैं उनका उच्चारण करना चाहिये तथा भावार्थ पहिले ही से समझ रखना चाहिये ताकि कहते समय अर्थ विचारणा कर सके। साथ २ 'जकिंचि नमुत्थूण' वगेरह विधि के सुत्रोको जो मागधी भाषामे है, शुद्ध कहना चाहिए। साथ ही पूर्णोच्चार करते हुए कहना तथा उनको अर्थ विचारणा करनेके लिए उनके भावार्थको पहिले हो से समझ रखना चाहिये। जो लाग अर्थ समझे विना चैत्यवदन करते है वे

ठीक २ उच्चारण भी नहीं कर सकते हैं क्योंकि शुद्धोच्चारण का आधार अर्थ की समझ पर अधिक है। कभी २ तो अर्थ नहीं समझे हुए लोग चैत्यवदन करनेवाले पाठ अशुद्ध बोलकर स्तुति के बदले निन्दा कर बैठते हैं। यद्यपि उनका अध्यवसाय निन्दा करनेका नहीं है, इसलिए मानसिक बन्ध तो नहीं पड़ता है, मगर वचन सम्बन्धी तो अशुभ बन्ध पड़ ही जाता है। चैत्यवदन, स्तवन और स्तुति जो गुजराती व देशी भाषामें होती है, उनके अर्थको समझने की बहुत से आदमी आवश्यकता ही नहीं समझते और जैसा याद रहा हुवा होता है वैसा ही बोल देते हैं कि जिसको सुनने से अर्थ समझनेवालोको उनपर बड़ा खेद होता है।

(२८) चैत्यवदन, स्तवन व स्तुति कहां २ कहनी चाहिये ? कौनसा चैत्यवदन कौनसा स्तवन और कौनसी स्तुति कहां कहने ... इ... ... बड़ा जरूरी है।

आदत डालनी चाहिये क्योंकि इच्छित फल की प्राप्ति तो भाव-पूजा ही से हो सकती है। यह सर्वदा ध्यान में रखना चाहिये। नवकार वाली या अनानुपूर्वी गिनने का समावेश भी भाव-पूजा ही में होता है। भाव-पूजा करनेमें ऐसा तल्लीन हो जाना चाहिये कि जिससे परमात्माके साथ तदाकारपन हो जाय अर्थात परमात्मा में और पूजक मे कोई भेद नहीं रह जाय एव जिससे परमात्मा को अथवा अपनी ही आत्मा को जो वास्तवमें परमात्मा ही के स्वरूपवाली है, परम प्रसन्नता हो। भाव-पूजा कर रुप या वेठ (वेगार) रुप नहीं होनी चाहिये, कितने ही तो द्रव्य-पूजा करके ही चलते बनते हैं, भाव-पूजा तो करते ही नहीं, उन्हें समझना चाहिये कि वे परम आवश्यकीय कर्त्तव्य तो करना ही भूलते हैं।

(३०) चैत्यवदन अथवा भाव-पूजा किस लिये करनी चाहिये इसका निमित्त व हेतु 'अरिहन्तचेइयाणं' में जैसा बताया गया है वैसा ही

समझना चाहिये। क्योंकि वहा यह हेतु है कि चैत्यवंदन के प्रान्तमें कायोत्सर्ग करना पड़ता है उसी के सम्बन्ध में बताया गया है। यही हेतु व निमित्त भी सामान्य चैत्यवंदन के सम्बन्धमें भी समझना चाहिये।

(३१) चैत्यवदन के प्रान्तमें जो एक नवकार का काउसग्ग किया जाता है वह खूब शान्ति एव स्थिरता से करना चाहिये। यदि एक नवकार का चिन्तवन यथार्थ रूप हो तो इतने ही समयमें प्राणी अनेक कर्मोंका चय कर देता है।

(३२) चैत्यवदन में अधिकाश में तो योग मुद्रा ही रखनी पड़नी है। 'जयवीयराय' तथा 'दोजावति' कहते समय मुक्तासुक्ति मुद्रा रखनी चाहिये तथा 'जयवीयराय' कह कर खड़े होनेके पश्चात पैरो आश्री तो जिनमुद्रा तथा

---

१ दोनों हाथोंकी दशों आगुलियोंको माहो माहे अन्तरित कर दोनों हाथोंको जोड पेट पर कोणी (अकुणी) को रखना।

२ दोनों हाथोंको बराबर रख ललाट के आगे रखना।

३ पैरों की अङ्गुलियों को जगह ४ आगुल की दूरी पैर की पीछे की ओर कुछ उससे कम अतरे सह पैरोंको रख कायोत्सर्ग करना। (देखो देववंदन भाष्य पृ० २७)

हाथ आधी योग मुद्रा रखनी चाहिये। इन मुद्राओंका स्वरूप किसी विज्ञ पुरुष से समझ लेना चाहिये एवं उसी प्रमाणसे इन मुद्राओंको बराबर उपयोगमें लाना चाहिये।

यह लेख जिनराजभक्ति कैसे करनी चाहिये इसकी सूचनाके लिए संक्षेप से लिखा गया है. यह विषय इतना विशाल है कि इसका जितना भी विस्तार किया जाय, हो सकता है, परन्तु अल्प बुद्धिवालों के समझमें आजाय जितना ही लिखना लेख का उद्देश्य है। भक्ति करने की इच्छा जब से होती है, उसी समय यह ध्यानमें रखना चाहिए कि कोई आशातना ● नहीं हो जाय क्योंकि अशातना भक्तिका नाश कर देती है। जो मनुष्य भक्ति के असल रूप को समझ

● आशातना ८४ मोटी आशातना १० वजनी चाहिये। उपरान्त पूजा करते समय कलश, धूपदान वगैरह का प्रभुजी के लग जाना तथा बिम्ब का हलजाना आदि आशातनाओंका निवारण करना चाहिये।

कर विशुद्ध तन, मन, धनसे परमात्मा की भक्ति करता है उसका इस भव में तथा पर भव में अवश्य परम कल्याण होता है। गुणग्राही महानुभाव इस लेख को पढ़ कर इसका सदुपयोग करें जिससे उनका कल्याण होगा, इतना कह कर यह लघु लेख समाप्त किया जाता है।

कुंवरजी आणंदजी।



जिनेन्द्र सम्बन्धीय साधारण ज्ञान।

(लेखक पं० चन्दूलाल)

हे जिज्ञासुवृन्द! इस संसार में अनन्त जीव हैं, वे सब ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुण की अपेक्षा से एक समान हैं, अस्तु श्रीजिनेन्द्र भगवान और अपन ज्ञानादिक गुण की अपेक्षा से एक समान हैं। तो श्रीजिनेन्द्र भगवान पूज्य और अपन पूजक, श्रीजिनेन्द्र भगवान तो तीन लोक के स्वामी, और अपन सेवक, श्रीजिनेन्द्र भगवान परमात्मा और अपन बाह्यात्मा, श्री-जिनेन्द्र भगवान अनन्त ज्ञानी और अपन अज्ञानी, श्रीजिनेन्द्र भगवान ध्येय और अपन ध्याता इत्यादि इतना अधिक प्रभेद होनेका क्या कारण है? इसके सम्बन्धमें विचार करने से एवं गुरुगमसे अनुभव करनेसे मालुम होगा कि यह आत्मा अनन्त शक्तिवाला है, पर

अनादि के कर्म-प्रभाव से यह सिंह के तुल्य आत्मा एक बकरी की नांइ दुर्बल बन गया है। श्रीजिनेन्द्र भगवान भी पहिले तो अपनी ही तरह सकर्मज थे, परन्तु उन्होंने अपनी आत्मा के निजरूप को पहिचान कर सिंह की तरह शक्तिका विकाश कर अनादिकाल के लगे हुए कर्मोंको एक क्षण भर में नष्ट कर सम्पूर्ण आत्मस्वरूप को विकशित कर परमात्म-पदको प्राप्त किया है। हम लोग अभी तक आत्माकी शक्ति का विकाश नहीं कर सके हैं, एवं आत्म-शक्तिके विकाश करनेमें जितने प्रयोग परिश्रम की आवश्यकता है, उतना परिश्रम भी नहीं करते हैं। यही कारण है कि हम लोग अभी तक इतने निर्बल हैं। शंका—"जड़रूप कर्मोंने सिंह तुल्य आत्मा के स्वरूप को नष्टप्राय कर दिया है, तो आत्मा से तो कर्म ही बलवान है, और यदि कर्म ही बलवान है तो बलवान कर्मों की शक्ति कैसे हटा

हमे यह बतला दीजिये कि आत्मा और कर्म दोनोंमें बलवान कौन है ?

उत्तर—हे जिज्ञासु बन्धुवर्ग। आपकी यह तर्क ठीक है क्योंकि जबतक आत्मारूपी सिंह ने अपने पराक्रम को प्रकट नहीं किया है, तब तक कर्मोंका बलवत्तरपन है। श्रीसर्वज्ञ परमात्मा फरमाते हैं कि—"कथ्थ य जीवो बलिओ कथ्थ य कम्मावि हुंति बलियाइ" (किसी समय जीव और किसी समय कर्म बलवान होते हैं) अस्तु आत्मा बलवान होनसे जरुर कर्मोंका नाश कर देता है। इसीलिये जिनेश्वर भगवान अपनी आत्मशक्तिका विकाश कर कर्मोंका नाश कर देनेसे जिनेश्वर भगवान पूज्य और अपन पूजक, श्रीजिनेश्वर भगवान परमात्मा और अपन बाह्यात्मा इत्यादि अधिक प्रभेद हैं। अस्तु ऐसे जिनेन्द्र भगवान के अवलम्बन से अपन भी किसी न किसी समय आत्मशक्तिका विकाश कर श्रीजिनेन्द्र तुल्य हो सकेंगे। इसी

ही हेतु से श्रीजिनेन्द्र परमात्मा की पूजा भक्ति करना परम योग्य है।

पूजारियोंके कार्यकी तपसील (विवरण)

१ पूजा के कपड़ो बिना अथवा गर्भगृहमें पहिनने योग्य कपड़ो बिना, दूसरे कपड़े पहिन कर अथवा कम्बली पहिन कर गर्भगृहमें प्रवेश नहीं करना चाहिये, एवं दूसरा भी कोई इस तरह गर्भगृहमें प्रवेश करता हो तो उसे सभ्यता से समझा देना चाहिये।

२ पूजा वगैरह के कपड़े भगवान की दृष्टि के सन्मुख नहीं बदलने चाहिये, और दूसरा भी कोई बदलता हो तो उसे ऐसा नहीं करनेके लिये सभ्यता से समझा देना चाहिये।

३ पूजाकी केशर अधिक पतली नहीं घिस कर भगवान के अङ्गपर टिके तथा बह न जाय ऐसी गाढ़ी घिसनी चाहिये।

४ प्रक्षालन (पखाल) का दूध हरदम छान कर उपयोग करना चाहिये

५ गर्भगृह के अन्दर कोई भी काम करना हो वह अष्टपुट मुखकोश बाधकर ही करना चाहिये।

६ प्रथम गर्भगृहके दीवारोंका तथा खिड़कियों वगैरह का कचरा निकाल कर पश्चात रंगमंडपका कचरा निकालना चाहिये। तदनन्तर प्रभुजी को मोरपखी से प्रमार्जन कर सिंहासन का, सिंहासनके चालोंका तथा गर्भगृहका समस्त कचरा निकालना चाहिये और जीव रक्षा हो सके ऐसे योग्य स्थानमें उस कचरे को गिराना चाहिये।

७ पूजाके पात्रोंका उपयोग करनेसे पहिले उनको धोकर साफ करना चाहिये एवं धूपदान को भी राखेर कर पीछे काममें लेना चाहिये।

८ जहांतक हो सके स्नात्र-जल को पञ्चासन से नीचे नहीं गिरने देना चाहिये। यदि कदाचित भूलसे गिर भी जाय तो उसे उसी साफ कर लेना चाहिये।

९ प्रत्येक प्रतिमाजी के किसी भी अङ्गमें जलांश न रह जाय, इस वास्ते अङ्ग लुहण की घत्ती वनाकर उस अङ्गको साफ कर लेना चाहिये।

१० प्रतिमाजी का अङ्गलुहण, केशर, पुष्प, थालकुंची (खसकुंची) वगस, आदि कोई भी पूजा का सामान अपने हाथके सिवाय और किसी भी अङ्ग से स्पर्श नहीं होना चाहिये।

११ प्रतिमाजी की अङ्ग पूजा की कोई भी वस्तु नीचे जहां चलना फिरना, उठना, बैठना, खड़ा हाना आदि होता है ऐसी जगह नहीं रखनी चाहिये। पर उनको किसी पट्टे वा बाजोठ पर ऊचो जगह पर रखना चाहिये।

१२ भगवानके दाहिनी तरफ दीपक एवं बाई तरफ धूपदान रखना चाहिये।

१३ अपने कपालमें तिलक करके, एवं कदाच पूजा करते समय अपना हाथ किसी [illegible] से अथवा वस्त्रसे अड़ गया तो [illegible] धोकर पूजा करनी

१४ जलसे हाथ धोकर रुमाल से पोंछना चाहिये, न कि पूजाके वस्त्रोंसे अथवा कम्बलोंसे वा दीवार थम्भे आदिसे।

१५ स्नात्रजल, अङ्गलुहण व हाथ धोया हुआ जल, छत अथवा खालमें नहीं गिराकर किसी पात्रमें डालकर योग्य स्थानमें गिराना चाहिये।

१६ अङ्गीमें कटोरिया (कचोलिया) प्रतिमा जी के चिपकाते समय कटोरियोंके पहिले की लगी हुई केशर का साफ कर पश्चात चिपकानी चाहिये।

१७ मन्दिरजीमें गृहकर्म की बातें अथवा किसी भी तरह की फजूल बातें और क्लेश उत्पन्न करनेवाली निन्दा इत्यादि विकथा नहीं करनी चाहिये तथा अविनय हो इस तरह का कोई भी काय नहीं करना चाहिये।

१८ वालकुंचियोंमें (खसकुंचियोंमें) जलांश रह जानेसे जीवोत्पत्तिकी सम्भावना है, इसलिये

उनको साफ करके अर्थात जल झटका करके रखनी चाहिये ताकि वे सूख जाय।

'कचरा इत्यादि साधारण कार्य करनेवालोंके कार्य का विवरण"

१ देहरासर खुलने से लगाकर देहारासर मङ्गलिक होवे तबतक हर समय उपस्थित रहना चाहिये एव इसमें किसी भी तरह की लापरवाही नहीं करनी चाहिये।

२ प्रात.काल आते ही जल रखनेकी जगह केशर घिसने की जगह तथा मन्दिरजीके (देहरासरके) रङ्गमण्डप को जगह का कचरा साफ करना चाहिये तथा पत्ती वगैरह की विष्ठा पड़ी हो तो उसे भी साफ करनी चाहिये। (जहांतक हो सके कचरा ऊनके दण्डासनसे अथवा कोमल मोरपखीके दण्डासन से वा दक्षिण के कोमल घास की ~ से वा शठा की पजणीसे करनी,

३ कचरा साफ कर लेनेके पश्चात कूंडिया जल रखनेकी हाड़ियाँ कलश, रकैबी, वाटकी, आदि पूजाके उपयोगमे आनेवाली वस्तुओको पोछकर, साफ कर धो लेना चाहिये और उन्हे योग्य स्थानमे रख देना चाहिये।

४ एकत्रित किया हुआ कचरा ज्यों त्यो नहीं फेंक कर किसी योग्य स्थानमे जहा जीव रक्षा हो सके ऐसी जगह गिराना चाहिये।

५ इसके बाद दीपक, लालटेन, धूपदान, दीये आदिमें से वासी दीपक, घी, बत्ती, राख आदि निकाल कर इनको साफ करना चाहिये। जो वस्तुयें जलसे नहीं माजी जा सकती उन्हें कपड़ेसे पोछकर साफ करना चाहिये और देहरासर मङ्गलिक करते समय भी इन वस्तुओ को साफ कर रखना चाहिये।

६ इसके वाद गर्भगृहके आगे रहा हुआ धूपदान एवं रङ्गमण्डपमे रहे हुए पट्टे वगैरह किसीके पैरोंमें न आवे ऐसी योग्य जगह रख देना चाहिये।

९ केशर घिसने वगैरह की जगह पर जल, केशर घी अगरबत्ती, दियासलाई रूई आदि वस्तुओंको अपनी जगहपर हर समय खयाल करके पहिले ही से रख देना चाहिये, क्योंकि इनमेंसे कोई वस्तु किसी समय हाजिर न हो तो कितने ही भाई इनके बिना ही आलस्य और जल्दीमें काम चला लेते हैं, किन्तु ऐसा करना उचित नहीं। इन वस्तुओंके पात्रोंको भी अच्छी तरहसे ढक देना चाहिये ताकि जीव जन्तु एव कचरा इनमें पड़े नहीं।

१० बिना स्नान किये गर्भगृहमें कदापि प्रवेश नहीं करना चाहिये. यदि किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो पूजारी अथवा पूजा करने वाले श्रावक से मंगा लेनी चाहिये।

११ अङ्गलुहणोंको एव पाटलुहणों को सर्व गर्भगृहोंमें पूजा हो जानेके पश्चात् ऐसे स्थानमें रखना चाहिये जहां सूखनेके बाद नरम रहें पर किसी वस्तुसे अड़े नहीं। और इनको

धोनेके बाद या पहिले कभी भी नीचे जमीन पर नहीं रखना चाहिये, पर किसी उंचे स्थानमें अथवा पात्रमें रखना चाहिये एवं अपने शरीर अथवा कपड़ेसे नहीं अड़ने देना चाहिये। इन को धोया हुआ जल किसी खाल वा दीवारमें नहीं गिराकर मन्दिरजी के बाहर जल्दी सूख जाय ऐसी निर्जीव भूमि में छूटा छूटा गिराना चाहिये।

१२ स्नात्रजलमें से वरग, पुष्प, चावलादि जो वस्तु निकाली जा सकती है उनको निकाल कर एवं एक अङ्गलुहणा से स्नात्र जल को छान कर बादमें किसी योग्य स्थानमें छूटा छूटा गिराना चाहिए, जिससे अन्दर त्रस जीवोंकी एवं वनस्पतिकी उत्पत्ति नहीं होने पावे, क्योंकि उस जलको इकट्ठा कर रोज २ एकही जगह गिरानेसे वहा उस स्थान पर जीवोत्पत्ति एवं वनस्पति पैदा हो जाती है। यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि जिस जगह स्नात्रजल गिराया

जाता है वहां गमनागमन तो नहीं है, अर्थात स्नात्रजल किसी के पैरोके नीचे नहीं आना चाहिए।

१३ जहा जहा अधिक गर्भगृह होते हैं वहा सारे ही गर्भगृहोके जलको एकत्रित कर गिराया जाता है, पर इसके बीचमें मक्खि आदि जन्तु उस जल में पड़कर नष्ट हो जाते हैं, इसलिए ज्योंही जिस गर्भगृह में पूजा हुई त्योंही उस स्नात्रजल को योग्य स्थानमें गिरा देना चाहिए, और यदि सारे ही गर्भगृहोंके जलको इकट्ठा करके एक साथ ही गिराना हो तो स्नात्रजल को किसी आवरण (ढकन) वाले पात्रमें रखना चाहिए और पहिले के स्नात्रजल का ढकना कभी नहीं भूलना चाहिए। कार्यकर्त्ताओंको [illegible] पात्र अवश्य रखे।

[illegible] मक्खी, कबूतर आदि

[illegible] इनको

[illegible] उठाकर

मन्दिरजी के वाहर किसी दूर जगह अकूड़ी आदि स्थानमें गिरा देना चाहिये। वहां से आकर फिर से स्नान करनी चाहिये।

१५. देहरासर मगलिक होते समय घर जानेके वक्त निम्नलिखित वातोपर ध्यान देना चाहिये।

(क) दूसरीवार कचरा निकालते समय खिड़कियां, दोवार, जालियों आदिमें जो जाले वगैरह रह जाते है उन सबको दूर करना चाहिये और फिर बादमें कचरा निकालना चाहिये। कचरेमें जो बादाम, सुपारी, चावल आदि हों उनका कोई जीवजन्तु न लगे ऐसे योग्य स्थान में रख देना चाहिये एव रङ्गमण्डप में पड़े हुए धपदान, पट्टे आदि को किसी के पैरोमे नहीं पड़े एव जहा टूटे फूटे नहीं ऐसे स्थानमें रख देना चाहिये।

उपर लिखे अनुसार
ादिको हर रोज साफ

और यदि ऐसा न बन पावे तो हरदम आनेवाली जगहोंका तो कचरा रोज निकाल द देना चाहिये और दूसरी २ जगहों को आठ वाड़िये तो अवश्य ही साफ करना चाहिए गर्भगृहके आगे कोई उतरे हुए फूल पड़े हो उनको उठा लेना चाहिए।

(ग) बादाम मिश्री आदि चीजोंपर कीड़ी आदि जन्तु नहीं चढ़े इसलिए उनको ढक्कनवाले डब्बे वा लकड़ी को पेटीमें चाहिए। कार्यवाहकोंको उचित है कि वे ... ही से ऐसा प्रवन्ध कर रखें।

(घ) पूजा की बची हुई केशर तथा जल बासी नहीं रखना चाहिए इसलिए इनको हर रोज निकाल देना चाहिए।

(ङ) लालटेन, दीपक आरती मंगलदीप ढक्कन, रकेबी, बाटकी और खाली पात्रोंको ... रोज मांजकर योग्य स्थानमें रखनेका ... रखना चाहिये।

१६ किसी समय यदि वर्षा का जल मन्दिर जीके किसी भागमें रहा हो तो दूसरे दिन प्रातः काल ही उस जलका लेकर वाहर वर्षा ही के जलमें गिराकर मिला देना चाहिए।

१७ किसी दर्शन करनेवाले अथवा पूजा करनेवाले श्रावक अथवा पूजारी की तरफ से बताये हुए किसी भी काम को अपने हाथके कार्य को पूरा करके अथवा अपने हाथ का कार्य बीचमें छोड़ दिया जाय तो कोई विगाड़ नहीं होगा ऐसी हालत मे अथवा अपने हाथके कार्य का दूसरा कोई उचित प्रवन्ध करके, बादमें उनसे बताये गये कार्य को कर देना चाहिये। हाथके कार्य को विगड़ता हुआ कभी नहीं छोड़ना चाहिए, और साथ ही बताये गये कार्य के प्रति लापरवाही भी नहीं करनी चाहिए। बताया गया कार्य यदि जल्दी का हो तो चालू कार्य नहीं विगड़े ऐसी हालत में छोड़कर कर-

१८ केशर घिसने की जगह हाथ धोने आदि का जल इकट्ठा हो जाता है, और एसी हालतमें जल अधिक समय वहीं पड़ा रहनेसे मक्खी आदि जन्तु उसमें पड़कर मर जाते हैं। इसलिये उस जल को तुरन्त ही बाहर किसी योग्य स्थानमें गिराने का हरदम उपयोग रखना चाहिये।

१९ कोई स्त्री यदि मन्दिरजीमें ऋतुधर्मको प्राप्त हो गई हो, एवं किसी बालक ने टट्टी वा पिसाब कर दिया हो तो शीघ्र ही उस स्थानको प्रथम जलसे साफकर पश्चात् दूधसे धो डालना चाहिये (इसका खर्च आशातना करनेवालेको देना चाहिये, यदि वह नहीं दे तो अन्तमें मन्दिरजी के खर्च से ही आशातनाको तो दूर करवानी ही चाहिये) एव स्वच्छ हो जानेके पश्चात् दसाग वगेरह धूप कर देना चाहिये।

॥ समाप्त ॥

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम प्रभु।
मंगलं स्थूलिभद्राद्या, जैन धर्मोस्तु मंगलम् ॥

शीघ्रता कीजिये ।   नहीं तो पछताना पड़ेगा !!

श्रीअभय जैन ग्रन्थमालाकी प्रकाशित पुस्तके

अवश्य खरीदिये ।

उक्त ग्रन्थमाला श्रीमान् शंकरदानजी नाहटा के पुत्ररत्न स्व० अभयराजजी नाहटा के स्मरणार्थ वि० सं० १९८२ में स्थापित की गई थी। बाबू अभयराजजी बहुत ही उच्च विचारवाले एवं सुधार प्रिय थे। आपके हृदयमें समाज सुधार एवं शिक्षा-प्रचार की भावनाऐं कूट २ कर भरी हुई थीं, हर घड़ी आप इसी चिन्ता में निमग्न रहते थे कि इस ओसवाल जाति की डूबती हुई नौकाका किस प्रकार उद्धार हो। आपकी भावनाऐं फलित हो नहीं पाई थीं, कि उनके पहले ही दुर्दैव वश कराल काल ने उन्हें अपना ग्रास बना लिया। बस, आपकी प्रबल भावनाओंको चिर स्मरणं रखनेके लिये ही इस माला की स्थापना हुई, और थोड़े ही कालमें इस मालाके बहुत ही उपयोगी निम्नलिखित [illegible] पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं। आशा है प्रत्येक महाशय इससे लाभ उठायेंगे।

(१) अभयरत्नसार।

पुस्तक क्या थी, वास्तविक में रत्न ही, इस पुस्तकमें खरतर गच्छीय पंचप्रतिक्रमण साधु प्रतिक्रमण सूत्र, पक्खी सूत्र के साथ

ही साथ बहुत से मनोहर स्तवन, सज्झाय रास, स्तोत्र और तप विधियें आदि का बहुत ही अच्छा संग्रह एवं अन्तमें हिंदी भाषामें "भक्ष्याभक्ष्य विचार" नामक लेख है। विशेष क्या कहा जाय इसकी प्रशंसा के लिये इतना ही लिखना पर्याप्त होगा, कि लोगोंने इतना अपनाया कि अब स्टाकमें पुस्तकें नहीं रही। पृष्ठ संख्या ८०० सजिल्द मूल्य ।॥)

(२) पूजा संग्रह ।

पुस्तक का नाम ही इसकी उपयोगिता प्रकाशन के लिये काफी होगा। इसमें भिन्न २ महान् कवियों की रचित १७ पूजाओं के साथ समयसुन्दरजी महाराज की अप्रकाशित चौबीसी तथा भाव पूर्ण स्तवन भी दे दिये गये हैं, पृष्ठ ४६४ होने पर भी सजिल्द का मूल्य रु० १) मात्र। पुस्तक अवश्य आदरणीय है बिकने पर 'अभयरत्नसार' की तरह इसके लिये भी हाथ मलते रहना पड़ेगा।

(३) सतीमृगावती ।

(लै० भंवरलाल नाहटा)

कौशाम्बी अधिपति राजा शतानीक की महिषी सती मृगावती का जीवन चरित्र है। पुस्तक बड़ी ही रोचक एवं सतीत्व रससे सनी हुई है इसे पढ़कर आप अपने हृदय में महान् शान्ति मिली हुई पायेंगे आपके हृदय पर सतीत्व एवं सहनशीलता की गहरी पड़ी हुई देखेंगे। इतना होते हुए भी भाषा अति सरल है।

स्त्रियोंके लिये तो मानो यह उनका सौभाग्य ही है, इसकी प्रत्येक स्त्री को पासमें रखनी चाहिये। मूल्य ≠) मात्र।

(४) विधवा-कर्त्तव्य।

(ले० अगरचन्द नाहटा)

ताड़ पत्र पर लिखित प्राचीन "विधवा कुलक" नामक प्राकृत कुलक का मूलसह विस्तृत विवेचनात्मक भाषानुवाद है। अन्तमें विधवाकर्त्तव्य नामक स्वतंत्र लेख में विधवा स्त्रियों के प्राय सभी कर्त्तव्यों पर काफी प्रकाश डाला गया है। सच लिखा जाय तो विधवा स्त्रियोंके जीवन को सार्थक बनाने के लिये यह अमूल्य ही है। पृ० सं० ७२ मूल्य ≠) मात्र।

(५) स्नात्र पूजादि संग्रह।

इसमें स्नात्र पूजा, अष्ट प्रकारी पूजा, दशत्रिक स्तवन आदिका अच्छा संग्रह है। दो पैसे की टिकट भेजनेपर मुफ्त भेजी जाती है।

(६) जिनराज भक्ति आदर्श।

प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के हाथमें ही है। "हाथ कंकण को आरसी क्या" कहावत के अनुसार लिखने की आवश्यकता नहीं। दो आने की टिकट भेजने पर पुस्तक भेंट की जायगी।

अब इस ग्रन्थमाला द्वारा ऐतिहासिक और तत्वज्ञानके सुन्दर २ ग्रन्थ शीघ्र [illegible] हैं। साहित्य प्रेमी पाठकों को

तो प्रथम ही से ग्राहक बन जाना चाहिये नहीं तो सम्भव है कि फिर हाथ न आने पर पछताना पड़े।

शीघ्र छपनेवाले ग्रन्थ।

(१) श्रीजिनचन्द्र सूरि (अकबर प्रतिबोधक) का जीवन चरित्र। (२) सम्यक्त्व स्वरूप (३) कविवर समयसुन्दर (४) मस्तयोगी ज्ञानसारजी (५) कविवर धर्मवर्द्धनजी इत्यादि।

नोट—ज्ञात रहे कि उपरोक्त सभी जीवनियां ऐतिहासिक खोज शोध के साथ लिखी जायगी।

मिलने के पते —

श्रीअभय जैन ग्रन्थमाला।
ठि० दानमल शंकरदान नाहटा,
नाहटों की गुवाड़ (बीकानेर)

शंकरदान शुभैराज नाहटा
५।६ आरमेनियन स्ट्रीट
कलकत्ता।



श्री तेरापंथ किशोर मंडल
बीकानेर

जैन दर्शन में तत्त्व-मीमांसा

—मुनि नथम

तो प्रथम ही से ग्राहक बन जाना चाहिये नहीं तो सम्भव है कि फिर हाथ न आने पर पछताना पड़े।

शीघ्र छपनेवाले ग्रन्थ।

(१) श्रीजिनचन्द्र सूरि (अकबर प्रतिबोधक) का जीवन-चरित्र। (२) सम्यक्त्व स्वरूप (३) कविवर समयसुन्दर (४) मस्तयोगी ज्ञानसारजी (५) कविवर धर्मवर्द्धनजी इत्यादि।

नोट—ज्ञात रहे कि उपरोक्त सभी जीवनियां ऐतिहासिक खोज शोध के साथ लिखी जायगी।

मिलने के पते —

श्रीअभय जैन ग्रन्थमाला।
ठि० दानमल शङ्करदान नाहटा,
नाहटों की गुवाड़ (बीकानेर)

शङ्करदान शुभैराज नाहटा
५।६ आरमेनियन ष्ट्रीट,
कलकत्ता।

